अंतर्भारतीय पुस्तक माला

किनू ग्वाले की गली

किनू ग्वाले की गली

संतोषकुमार घोष

अनुवाद

अरिंदम

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नयी दिल्ली

1977 (शक 1899)

रु. 8.25

Original title : KINU GOLAR GOLI (*Bengali*)
Hindi translation : KINU GWALE KI GALI

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित और रूपक प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032 द्वारा मुद्रित।

भूमिका

उपन्यास आज लेखक के आत्मप्रकाश का प्रबलतम साधन बन गया है। जेम्स ज्वायस, टामस मान, मार्सेल प्रूस्त, फ्रांज काफ्का, आलबेयर कामू, ज्यां पाल सार्त्र, फ्रांसोआ मोरिआक, आर्नेस्ट हेमिंग्वे, लाक्सनेस, पास्तरनाक—ये दस व्यक्ति आधुनिक पाश्चात्य उपन्यास के प्रधान शिल्पी हैं। इन लोगों की जीवन जिज्ञासा एक साथ विश्वमानव का आत्मसंधान और लेखक का आत्म-आविष्कार है। यह प्रथम विश्व युद्ध से आरंभ हुआ और इसका विस्तार बाद के तीन दशकों में होकर आज इसे संपूर्ण शिल्परूप मिला है।

बंगला उपन्यास में आधुनिकता का प्रारंभ रवींद्रनाथ के 'चतुरंग' (1916) से होता है। नायक का आत्मसंधान उसे बहिर्जगत से लौटाकर भीतर के दलहीज तक ले आता है। वस्तु से निर्वस्तु तक, चेतन से अवचेतन तक, वास्तव से अवास्तव तक 'चतुरंग' का नायक शचीश यात्रा करता है, जीवन के सत्य को खोजता है। दुख का विषय है, 'चतुरंग' का उज्ज्वल उदाहरण शताब्दी के प्रथमार्ध में बंगला उपन्यास में विशेष चर्चित नहीं हुआ—दो-एक व्यतिक्रम को छोड़कर। शताब्दी के प्रथमार्ध में नयी शैली का उपन्यास बंगला में आया। कंफेशन, डिटेक्शन और सेल्फ प्रोजेक्शन, अपराध की स्वीकारोक्ति, जीवन के सत्य का अन्वेषण और आत्म जीवनी शैली में आत्मानुसंधान ने इस समय के उपन्यासकारों की रचना को नियंत्रित किया। आंतरिक यथार्थ की खोज क्रमशः तीव्र और निर्मम हो उठी है, शिल्प रूप जटिल हुआ है, भाषा और संवाद स्पष्ट और सजे हुए हैं। कथात्मक उपन्यास से चरित्रात्मक उपन्यास, वहां से आत्म केंद्रित उपन्यास। इसी तरह उपन्यास का शिल्परूप फैलता गया है।

श्री संतोषकुमार घोष (जन्म 1920) के उपन्यास आलोचना की पृष्टभूमि के रूप में विश्व उपन्यास के पर्दे पर स्मरणीय हैं। संतोषकुमार घोष ने जब बंगला साहित्य में प्रवेश किया उस समय का यहां का वातावरण भी स्मरण योग्य है।

उन दिनों (1940-50) बंगाल और बंगाली जीवन एक सामूहिक विपर्यय के बीच पड़ा था। जिनका जन्म 1920 ईसवी या उसके आस-पास हुआ, उन लोगों ने इसी समय लिखना शुरू किया था। शरत्चंद्रीय रोमांटिक युग की समाप्ति, कल्लोलीय बोहेमियन दल की समाप्ति, विभूतिभूषण बंदोपाध्याय के प्रकृतिमुग्ध गद्य की समाप्ति : इस समय के बंगला उपन्यासों की पृष्ठभूमि है। संतोषकुमार और उनके सहकर्मी लेखकों (नारायण गंगोपाध्याय, नरेंद्रनाथ मित्र, नवेंदु घोष, ज्योतिरिंद्र नंदी, समरेश वसु, रमापद चौधुरी, विमल कर) ने जब तरुणाई में प्रवेश किया तब बंगला देश के पाल में उल्टी और पतन की हवा लगी थी। ऐसे सामाजिक ह्रास, राजनीतिक अशांति, आर्थिक विपर्यय के बीच युवा लेखकों ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। उस समय माणिक बंद्योपाध्याय के अतिरिक्त किसी भी पिछले खेमे के लोगों को प्रेरणा नहीं दे सके। माणिक की 'पुतुल नाचेर इति कथा' (1936) इन युवा लेखकों को प्रेरणा प्रदान करने वाले उपन्यास की तरह लगा था।

अनास्था, मूल्य बोधों का नष्ट होना, स्वस्थ जीवन दृष्टि की समाप्ति, बदलाव और ह्रास की प्रतिष्ठा, स्वतंत्रता बाद भारत में बंगाल की आर्थिक और राज-नीतिक महिमा का अवसान, इस पृष्ठभूमि को आलोच्य लेखकों ने आंखें मल कर देखा था, देखी थी क्षुब्ध मातृभूमि, आश्चर्य हुआ था भाग्य के पटाक्षेप पर, निराशा की लकड़ी के आघात से।

संतोषकुमार का जन्म फरीदपुर के राजबाड़ी (संप्रति विभाजित बंगलादेश) में हुआ। वहां उनका बचपन और कैशोर्य बीता। लेकिन उनके कहानी उपन्यासों में ग्राम्य जीवन चित्रण नहीं है। वे नगर जीवन के शिल्पी हैं। फिर भी वर्षा से भरी नदी, चांदनी रात में मांझियों के गले की उदात्त भोटियाली, दिशाओं में आपूरित काले बादलों ने उनके मन पर प्रभाव डाला है, यद्यपि साहित्य में उसकी छाया नहीं पड़ी। राजबाड़ी की याद वे नहीं भूले। फिर भी बंगाल के गांव उनके साहित्य का माध्यम नहीं हैं।

राजबाड़ी से मैट्रिक्यूलेशन परीक्षा पास करने के बाद संतोषकुमार 1936 में कलकत्ता चले आये। उस समय से कलकत्ता में स्थायी रूप से रहने लगे। 1938 से 1947 ईसवी : अठारह से सत्ताईस वर्ष की उम्र तक के जीवन में जो भी अनु-भव प्राप्त किया, अंत में वह सब संतोषकुमार के कहानी उपन्यासों में स्थायी

उपादानों के रूप में व्यहृत हुआ है। वस्तुतः इस समय जीवन की खोज में निमग्न अतृप्त अन्वेषी के रूप में संतोषकुमार ने स्वयं को बना लिया। उनके पहले उपन्यास 'कीनू ग्वाले की गली' 1950 में यह खोज शिल्प के रूप में परिणत होकर प्रतिष्ठित है। उस समय उनकी उम्र तीस वर्ष की थी। उस दिन से उपन्यासकार संतोषकुमार घोष की यात्रा शुरू हुई।

कलकत्ता उन्हें जन्म से ही प्रिय था, किशोर मन की प्रेयसी-सा। बचपन में छह महीने में एक बार कलकत्ता आते थे। पूरे तौर से आये सोलह वर्ष की उम्र में, कालेज जीवन के आरंभ में। पीछे छोड़ आये बंगाल का गांव और पैतृक स्मृति को। जीवन का द्वितीय अध्याय आरंभ हुआ। उस दिन उन्हें लड़ना पड़ा गरीबी के साथ। उत्तर कलकत्ता की अंधेरी गली में लगभग अंधेरे कमरे में किसी प्रकार अपने अस्तित्व की रक्षा की। क्योंकि उनका परिवार था दुर्दश अवस्था में, निम्नवित्त। परिचित, रिश्तेदारों के आने पर माता-पिता का मुंह सूख जाता था, मेहमानों की खातिरदारी की दुश्चिंता में। दूसरे किरायेदारों के साथ नहाने और पीने के पानी को लेकर झगड़ा होता। इस कृपण स्वार्थी कलकत्ते के असहनीय किरायेदारों के जीवन परिवेश ने लेखक को बहुत कुछ सिखाया था।

कलकत्ते का विचित्र दुरूह जीवन संतोषकुमार के उपन्यासों का प्रधान विषय है। मुख्य प्रतिपाद्य जीवन। उनकी दुरूहता और विचित्रता संतोषकुमार का प्रधान लक्ष्य है। वक्तव्य उनके लिए प्रधान है, कहानी गौण है। वक्तव्य जीवन केंद्रित, प्रायः आत्म केंद्रित।

जीवन यापन की समस्या क्रमशः तीव्र होती गयी। उस समय 1940 ई. में संपूर्ण देश में मंदी। अर्थशास्त्र में एम. ए. करते न करते चले गये बिहार के एक सामान्य जनपद में नौकरी के लिए। लौटकर कलकत्ता के राइटर्स बिल्डिंग में जूनियर क्लर्क के पद पर कुछ दिन काम करके छोड़ दिया। काम किया 'प्रत्यूह' संवाद पत्र में, सहकारी संपादक के पद पर। पैंतालीस रुपये की क्लर्की छोड़कर पैंतीस रुपये के संवाददाता की नौकरी की। यहीं से जीवन आरंभ हुआ। इसके बाद कलकत्ता और दिल्ली के अंग्रेजी और बंगला संवादपत्रों में अनेक उत्तरदायित्वपूर्ण काम करने के बाद अभी दैनिक आनंद बाजार पत्रिका में संयुक्त संपादक हैं। बहुत देश घूमे हैं, अंग्रेजी और बंगला में समान भाव से बोलते और लिखते हैं। इनके दोनों रूप प्रतिभायुक्त हैं। पत्रकार भी हैं और साहित्यकार भी।

संतोषकुमार ने बहुत उपन्यास नहीं लिखे हैं। तेईस वर्षों में (1950-72) उपन्यासों की संख्या केवल छह है—किनू ग्वाले की गली (1950), नाना रंगेर-दिन (1952), मोमेर पूतुल (1954), मुखेर लेखा (1959), जल दाओ (1967), नायक (1969), शेष नमस्कार (1971), समय आभार समय (1972), उनके दो नावलेट हैं—वेणु तोमार मन (1959) और संकाल थेके सकाले (1969)।

संतोषकुमार जनप्रिय लेखक नहीं हैं यह बात वे जानते हैं। पाठक प्रजा के अनुरंजन के लिए वे रुचि की सीता को त्यागने के लिए तैयार नहीं हैं। यह मनोभाव उनकी आत्मनिश्चयता का परिचायक है। वस्तुत: वे आत्मजीवनी शैली के उपन्यासों की रचना के आग्रही हैं। उनका लक्ष्य है—जीवन। उनकी शैली आत्म-जीवनी परक है। उनका वक्तव्य क्या है ? इसके उत्तर के लिए 'शेष नमस्कार' की भूमिका से उनका वक्तव्य उद्धृत करता हूं :

"असल में, मेरी धारणा है, सभी लेखक जीवन भर एक ही बात लिखना चाहते हैं, लिखते रहते हैं, क्रमश: चेष्टा करते हैं। मैंने भी की है। हो नहीं सका। 'नाना रंगेर दिन', 'मुखेर रेखा', 'जन दात्त', 'स्वयत्त नायक'। भरे हुए या केवल स्मृति ग्रंथ, एक के बाद एक। अंत में मुझसे न हो सकने के कारण इस 'शेष नमस्कार' को प्रस्तुत कर मुक्त होना चाहता हूं। लेकिन अंत हुआ क्या ? नहीं मानता।"

क्या है वह वक्तव्य जिसे संतोषकुमार संपूर्ण जीवन में लिख सके हैं ? उनके उपन्यासों के माध्यम से उत्तर पाया जाय।

प्रथम उपन्यास 'किनू ग्वाले की गली' में संतोषकुमार घोष के शिल्प सामर्थ्य की परख है, लेकिन निजस्वता प्रतिष्ठित नहीं है। वह हुई है बाद में। यहां पर लेखक नगर का शिल्पी है। वस्तुत: कलकत्ता उनकी प्रथम प्रेमिका है। नाना प्रकार के रंग-रूपों से उन्हें आकर्षित करती है।

'किनू ग्वाले की गली' उपन्यास के नाम में रवींद्रनाथ से संबंध की एक महक आती है। नोन लगी दिवालों में बीच-बीच से बालू झर गयी है, बीच-बीच में सीलन के हैं दाग। यह गली शहर की किसी भी प्रकार भागीदार नहीं हो सकी, न हवा न रोशनी, न गाड़ी-घोड़ा, न दुकान-दौरी। लेकिन हिस्से में बारिश खूब है। बारिश में खटाल का गोबर मिला पानी किनू ग्वाले की प्रत्येक रसोई में घुस आता है।

इस गली में भी प्राण है, लेकिन…

"वह क्या चौरंगी की तरह राग-रंग से भरा है। प्राण है, लेकिन बाघ-भालू की तरह तेज नहीं, मयूरी की तरह नृत्यरत नहीं। हिरण की तरह कुलांचे भरता हुआ नहीं। है केंचुए की तरह, किसी प्रकार अपने अस्तित्व को लेकर चलते हुए। छाती के बल चढ़ता है, बढ़ता भी है या नहीं।"

यह मंथर गति, निश्चलित प्राणवाली गली के जिस निम्न मध्यवर्ग जीवन में प्रवाहित है वे भी मंथर गति, निश्चल, दलदल में फंसे और आर्त हैं। अधिकतर लोग अशिक्षित, रुचिहीन। इसी गली में घर लिया है शिवव्रत बाबू ने। पापुलर पार्क से भवानीपुर, वहां से बहुबाजार, वहां से किनू ग्वाले की गली के दरबे-दरबे जैसे कमरे में उतरा आया है नीला का परिवार। निम्न मध्यवर्ग परिवार के समस्त कष्ट और ग्लानि एक-एक कर खुले हैं। इस तस्वीर को देखकर सांस रुक जाती है, लगता है इस गली से मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन नहीं, है मकान की छत—वहां मिलती है मुक्ति।

यह मुक्ति क्षणिक है वह जीवन के कष्ट और ग्लानि को दूर नहीं कर सकती। अभाव और वंचना के संसार में दिखायी पड़ता है संघर्ष। मां दमे की मरीज, प्रौढ़ पिता जीवन संग्राम में पराजित हैं। भाई, भाभी, देवव्रत, अमिता यहां से भागने का अवसर ढूंढ़ते हैं। मनींद्र उसकी पत्नी शांति, मनींद्र का आश्रित दोस्त इंद्रजीत, भाभी के धनी चाचा अविनाश बाबू—सभी जीवन को लेकर प्रमथ पोद्दार और शिवव्रत बाबू की तरह शतरंज खेलते हैं और घोड़े की चाल से मात खाते हैं। दूसरी ओर के मकान में आकर जुटता है नर्सों का झुंड शकुंतला, ललिता, गीता, अणिमा, स्टेला, सेवासत्र खोलती हैं रोगियों की सेवा के प्रण में। इन्हीं लोगों की संगत में उस संकरी गली में नीला का जीवन गुजरता है। जीवन से अमृत बटोरने के प्रयास में नीला असफल होकर शांति से क्षुब्ध होती हैं, इंद्रजीत से निस्पृह होती है।

लेकिन हमेशा के लिए किनू ग्वाले की गली में जिन लोगों ने जन्म लिया था एक-एक-करके दुबारा छिटकना शुरू करते हैं। देवव्रत, अमिता, मनींद्र, शांति चले जाते हैं, 'सेवासत्र' से एक-एक नर्स भाग जाती है गृहस्थी बसाने की उम्मीद में। केवल रह जाता है कवि इंद्रजीत। उसके साथ ही नीला मधुर स्वप्न देखती है, उम्मीद का महल खड़ा कर लेती है। कविता लिखना छोड़कर इंद्रजीत छापे-

खाने में पच्चीस रुपये माहवार पर प्रूफरीडरी का काम खोज लेता है। नीला के साथ वह भी जीवन शुरू करना चाहता है। "इंद्रजीत ने सोचा, नये सिरे से जीवन शुरू करना चाहता हूं, लेकिन कुल पच्चीस रुपयों का ही तो आधार है।"

ध्यान रहे कि 1935-36 के कलकत्ता शहर के जीवन संग्राम का यही था रूप। समस्त छटपटाहट और मलीनता, आर्थिक कष्ट और दुख भुला बैठी है नीला इंद्रजीत की पारस्परिक सहानुभूति में। यही है उनके नवीन जीवन का आधार।

नये सिरे से जीवन शुरू करने की आशा में किनू ग्वाले की गली की समाप्ति होती है। कलकत्ता के निम्नमध्य किंतु जीवन के दुख और कष्ट का अतिक्रम कर गये हैं नीला और इंद्रजीत। जीवन के प्रति मोहासिक्त दृष्टिकोण नहीं, तिक्तता और हताशा नहीं, एक नवीन आशा से प्रभासित होने के लिए आगे बढ़ा है लेखक।

'किनू ग्वाले की गली' से निकलकर लेखक चला आता है 'नाना रंग के दिन' में। यहां भी वे पूर्ववर्ती उपन्यास के रास्ते पर चले हैं। पहले उपन्यास में वे घटना और बाह्य जगत को छोड़ कर अंतर्देश में नहीं जाते हैं। यहां भी वही है। 1927-33 वर्ष के मुफस्सिल बंगाल के बंगाल और राजधानी कलकत्ते के पर्दे पर जातीय आंदोलनके बीच ही एक अबोध, अधकचरे किशोर मन पर सम-सामयिक जटिल घटना की—राजनैतिक, पारिवारिक, सामाजिक—जो छाप पड़ती है, उसी को आधार बनाकर 'नाना रंग के दिन' की रचना हुई है। मूल स्वर पूर्ववर्ती उपन्यास की तरह ही हृदयावेग का है, यहां उसे वहन करता है किशोर 'सुभाशीष', जो तीव्रता से कैशोर्य को पार कर रहा है, उसमें सहायक हो रहा है परिवेश। सुभाशीष में राजबाड़ी के लेखक के बाल कैशोर्य में प्रथम यौवन की छाप है। यहां आत्म प्रकृति सीधे-सीधे नहीं दिखायी पड़ती है, फिर भी थोड़ी-बहुत लेखक की छाप है। नायक के माता-पिता के चरित्र में लेखक के माता-पिता की छाप है। दिखायी पड़ता है, लेखक ने आत्म जीवनी परक उपादानों का व्यवहार किया है।

लेखक का तीसरा उपन्यास 'मोमेर पुतुल' (मोम की गुड़िया) है। संतोषकुमार के शिल्प कौशल और जीवन बोध ने इसमें पूर्णता की ओर कदम बढ़ाया है। उनकी प्रिय थीम है कलकत्ते का जीवन जो यहां और भी स्पष्ट हुआ है। गांव की लड़की सुधा मुख्य चरित्र है। उसकी आंखों से ही लेखक ने जीवन को देखा है। सुधा ने

क्या कलकत्ते को अपना लिया है—अथवा, कलकत्ते ने गांव की किशोरी को अपना लिया है : कौन-सा प्रश्न यहां आवश्यक है ? उपन्यास में इसी प्रश्न के उत्तर की खोज है।

सुधा की दृष्टि में कलकत्ता बड़े और महान जीवन का प्रतीक है। कलकत्ते ने सुधा को ग्रहण किया और निगल लिया है। कलकत्ते के कुछ महीनों के अनुभवों ने सुधा की उम्र बढ़ा दी है। इसीलिए गांव जाने पर माता-पिता भाई-बहन अपरिचित लगते हैं। जीवन संबंधी धारणाओं में यह निश्चित परिवर्तन ही सुधा के जीवन की मूल कहानी है। सुधा गांव और अपने परिवार से टूटती जा रही है। यह सत्य इसमें स्पष्ट है। यही है 'मोम की गुड़िया' की थीम। नागरिक जीवन से आक्रांत है यह उपन्यास। सुधा के द्वारा लेखक ने अपनी चिरप्रिय, चिर किशोर प्रेयसी कलकत्ता के गले में वरमाला डलवायी है। संतोषकुमार की जीवन जिज्ञासा नगरीय प्राण के पीछे-पीछे शिकारी-सी है। इस प्रचंड प्राणयुक्त पराक्रांत महानगर से उन्हें डर लगा है, घृणा हुई है, लेकिन प्यार भी किया है।

चौथे उपन्यास 'मुखेर रेखा' (चेहरे की रेखा) में संतोषकुमार स्वयं में उपस्थित है। बाह्य जगत् से अंतर्लोक में, घटना प्रधान उपन्यास से भावना प्रधान उपन्पास में, जीवन से संपर्कित कौतुहलों से जीवन के सत्यान्वेषण में, उम्र की दोपहर से उतराई की ओर आये हैं। यथार्थवादी आधुनिक उपन्यास लेखक के रूप में वे यहां पर प्रतिष्ठित हैं। यहां से उनका झुकाव आत्म समीक्षा की ओर हुआ उनकी शैली स्वीकारोक्ति मूलक है। उनके अन्वेषित जगत के जीवन की अनिवार्य गतिशीलता में व्यक्ति का विवर्तन, उनकी यात्रा आत्मोपलब्धि के पथ पर चली। इसी में कंफेशनल रीति की प्रतिष्ठा।

संतोषकुमार के उपन्यासों में जो जीवन कथा घूम-फिर कर आयी है, उसका स्पष्ट रूप दिखायी पड़ा इसी में। शैशव से बढ़ता है, बड़ा होता है, एक आदमी। कैशोर्य के संधिस्थल के धुंधलके में वह राह भूल जाता है। शर्मीला, निष्कलुष एक किशोर क्रमशः निर्लज्ज, बेपरवाह, पाप से ग्रस्त हो उठता है। जीवन के अंतिम समय उसकी आत्मशुद्धि की विकल चेष्टा। स्मृतियों की नौका के सहारे उस मुग्ध कैशोर्य में लौट जाना। वहां से फिर प्रत्यावर्तन : यही जीवन कथा संतोषकुमार का मुख्य आधार है। पहले तीन उपन्यासों में इसकी प्रस्तुति, चौथे उपन्यास 'मुखेर रेखा' में इसका पूर्णरूप।

आधुनिक उपन्यासों के निश्चित चिह्न यहां से ही संतोषकुमार घोष के उपन्यासों में स्पष्ट होते जाते हैं। 'मुखेर रेखा', 'जल दाओ', 'स्वयत्त नायक' 'सकाल थेके सकाले', 'शेष नमस्कार'—एक के बाद एक उपन्यासों में संतोषकुमार ने स्वयं को कठिन समय के शिल्पी के रूप में प्रस्तुत किया है।

खुद को लेकर शिल्प विचार, जीवन दर्शन, अस्तित्व की सार्थकता-अन्वेषण, स्वीकारोक्ति के माध्यम से आत्मोद्‌घाटन, संतोषकुमार की इस शिल्प प्रक्रिया का प्रथम सार्थक परिचय स्थल है 'मुखेर रेखा'। इसी तौर पर उपन्यासों के नायक आत्मसंधानी, स्वीकारोक्ति के माध्यम आत्मोद्‌घाटन के प्रयासी हैं। सौरेश (मुखेर रेखा), तिमिरवरण (जल दाओ), अनाम नायक (स्व्यत्त नायक), रूना, झूना, नीलकंठ, वासव (सकाल थेके सकाले) एवं वह मातृ-अन्वेषी नायक (शेष नमस्कार : श्री चरणेषु मां के) : लेखक के आत्मोद्‌घाटन का धारावाहिक स्तर है।

'शेष नमस्कार' उपन्यास की सूचना : 'उसका पहला पत्र' श्री चरणेषु। "कौन है यह पत्र लिखने वाला ? उपसंहार में यह मिलता है," यह कहानी उत्तम पुरुषों में जिसकी जबानी है, उसे मैंने फिर नहीं देखा।—वह मिल गया है या हम लोगों के बीच ही है।"

नायक का 'मातृ अन्वेषण' और 'आत्म अन्वेषण' अलग नहीं है, संयुक्त गठा हुआ है। मां को लिखे गये पत्रों की विधि से नायक के जीवन का सत्यान्वेषण मुख्य हो उठा है। मातृ लोक का उद्देश्य है नायक की यात्रा, असल में, सत्यान्वेषण और आत्मान्वेषण। अतः नायक का स्मृति चारण और आत्मोद्‌घाटन अंत में सत्यान्वेषण में पर्यवसित हुए। जीवन में अनेक लोगों से नायक की मुलाकात हुई है—मातृबंधु सुधीर मामा, लगभग अंधी रजनी, बूला, लीला मौसी, अरिंदम, बांसी। केवल मातृ अन्वेषण ही नहीं, उसी के साथ पितृ अन्वेषण भी। जीवन की व्यर्थ दुराशा से भग्न हृदय पिता प्रणव बाबू—से नायक का विरोध चाहे जितना हो, अंत में पुत्र की लेखकीय सत्ता के उन्मेष में पिता की ही विजय हुई है, एवं मृत्यु के पहले पिता इसे देखकर जा सके हैं। सबसे अंत में, सबके ऊपर मां, उन्हें लेकर ही नायक का आत्मोद्‌घाटन और सत्यान्वेषण हुआ है।

'शेष नमस्कार' मातृ संभाषण मात्र ही नहीं है, आत्म अन्वेषण, जीवन का सत्यान्वेषण है। इसी में इस उपन्यास का आधुनिक परिचय प्रतिष्ठित है।

संतोषकुमार घोष का अंतिम उपन्यास, 'समय आमार समय' (समय मेरा समय) सांप्रतिक अस्थिर उद्भ्रांति काल का आलेख है। 1970-71 उठा पटक और प्रतिशोध की भावना से उन्मत्त, पिपासा और आतंक ग्रस्त समाज की तस्वीर और उपन्यास है। प्राणों के डर से नायक एक मकान की छत पर के एक कमरे में आश्रय ग्रहण करता है। यह उपन्यास उसी की स्वीकारोक्ति है। यह कौन सा समय है ? क्या है उसका परिचय ? "इस सातवें दशक के आरंभ से कितने स्तरों पर कितने लोग कितनी भीरुता और धोखा धड़ी की लीपापोती कर आत्म प्रतारणा करते हैं और डर को घूस देकर समसामयिकता के साथ संधि कर लेते हैं, इसका संपूर्ण और यथातथ्य इतिहास यदि कहीं लिखा जाय तो भविष्य चौंक उठेगा।" लेकिन नहीं, लेखक समसामयिकता का गलत इतिहास नहीं लिख रहे हैं। जीवन का आलेख लिख रहे हैं। भय ग्रस्त अपराध बोध से पीड़ित नायक की जबान-स्मृति, स्वप्न, नरक दर्शन और प्रत्यक्ष दर्शन से प्राप्त अनुभवों का विवरण है। तो क्या डर से हार जाना ही अंतिम बात है ? आत्मावमानना और आत्म-प्रत्यावर्णिना ही चरम है ? अंधेरा क्या छंटेगा नहीं ? रक्त से भरा परिवेश ही विजित होगा। उपन्यास के अंत में लेखक शुभवृष्टिधर की—अंतिम विजय उनकी आस्था की हुई है। एक चरित्र (मनिमय) कहता है—"इसी क्षण हो सकता है हम लोग नीचे गिर रहे हैं, वहीं फिसल कर गिरने का वक्त आ गया है शायद, चल रहा है ।—बाद में उठूंगा। झूकूंगा नहीं मोटर पर।"

अंत में संतोषकुमार घोष के उपन्यास में जीवन के प्रति गंभीर अनुराग घोषित है।

—अरुणकुमार मुखोपाध्याय

1

मुहाने पर उतारते ही बस का काम खत्म, उसके भी बाद प्रायः दस मिनट चलने पर किनू ग्वाले की गली।

पहले पड़ती है महेश एड्डी स्ट्रीट, कमोबेश चहल-पहल। कैमिस्ट है, ड्रगिस्ट है। है हरेक किस्म का एक डिपार्टमेंट-स्टोर्स। स्टीम लांड्री, जिसका नाम सर्व-शुक्ला।

और आगे हरिमोहन मुखर्जी रोड के मोड़ पर स्कूल। इस स्कूल वाली इमारत बस थोड़ी-सी पुरानी भर है। फाटक के ऊपर अर्धचंद्राकार काठ की दफ्ती पर नाम एस. एम. एच. ई. स्कूल। पढ़ने वाले और मुहल्ले वाले लोग जानते हैं, एस. एम. का मतलब होता है सुरबाला मेमोरियल। नाम के नीचे प्रस्थापना वर्ष का भी उल्लेख था, जो वक्त और बारिश से धुल गया।

हरिमोहन मुखर्जी स्ट्रीट के चौरस्ते के बाद से शुरू होती है गंगाराम बसाक स्ट्रीट।

गूंगे-गूंगे चेहरे वाले मकान। छोटी-छोटी आंख जैसी कोटरवाली खिड़कियां और झड़ते पलस्तर वाले मुंह बाये से गलियारे। स्टूल पड़े रेस्तरां का सदाव्रत, खड़े घाट का धोबी खाना, उसके बाद, क्या आश्चर्य उसके बाद एक पार्क। भरी घास, टूटी रेलिंग, लगभग कट्ठा दो जमीन, फिर भी पार्क। रूह लोहा-लक्कड़ के बीच जरा-सी आक्सीजन का आश्वासन।

और भी थोड़ा आगे आकर दो-तीन मोड़ घूम के किनू ग्वाले की गली। एक साथ चार शरीर घुसें कि न घुसें ऐसी गली।

इस गली ने मोटर का चेहरा नहीं देखा है, ट्राम बस की हल्की घर्र-घर्र भी पार्क तक आकर थम जाती है, छकड़ा गाड़ी तक अंदर नहीं जाना चाहिए। कभी-कभार एकाध रिक्शा जाती है, जाते ही भागने-भागने को तैयार। साइकिल अवश्य चलती है, वज्रसमुत्कीर्ण मणि के सूते की तरह उनकी गति अबाध।

किनू ग्वाले की गली।

नमक लगी दीवारों की बीच-बीच की बालू धंस गयी है, बीच-बीच में सीलन के दाग।

लेकिन ये वर्णन तो आप लोगों का पढ़ा हुआ है

चौमुहाने के उस ओर से जो लोग महेश पट्टी और गंगाराम बसाक स्ट्रीट से बराबर गंगा स्नान को जाते हैं, वे लोग झांक कर शायद देखना चाहते हैं कि किनू ग्वाले की गली में लोगबाग आ जा तो रहे हैं। मतलब इस गली में भी प्राण है !

हैं क्यों नहीं। यदिदम् किंचम् सर्वं प्राणमयम्। किंतु किनू ग्वाले की गली का प्राण, वह क्या चौरंगी की तरह राग रस पूर्ण होगा। प्राण है, लेकिन बाघ-भालू की तरह तेज नहीं, मयूरी की तरह नृत्यरत नहीं, हिरण की तरह चंचल नहीं है, केंचुए की तरह किसी तरह अपने अस्तित्व को लेकर चलता हुआ। छाती के बल चलता है, आगे बढ़ता है या बढ़ता नहीं।

जो लोग गंगा स्नान के लिए जाते हैं वे लोग क्या इस गली में भी लोगों का निवास है सोचकर आश्चर्य करते हैं ? वो भी क्या होता है। वे लोग खुद ऐसी किसी गली से आये हैं कि नहीं, उसका कोई ठीक नहीं।

किनू ग्वाले की गली शहर में एक ही तो नहीं है।

गंगाराम बसाक स्ट्रीट में फिर भी ज्यादातर थे पक्के मकान, किनू ग्वाले की गली में घुसते ही टाली वाले मकान और मिट्टी की दीवालों की मिलावट शुरू होती है। बीच-बीच में खुले हाईड्रेन का फव्वारा छूटता है, चलते समय घुटनों तक कपड़ा उठाना पड़ता है। मूसलाधार वर्षा के दिनों में प्रलय का समुद्र। ये गली शहर से किसी भी तरह नहीं जुड़ पायी, न हवा, न गाड़ी घोड़ा, न दुकान-दारी न का मतलब कुछ नहीं। हिस्से में बरसात भर पूरी मिलती है। नये पानी में जब मैदान की घास ताजी हो उठती है, पार्क में उगते हैं मौसमी फूलों के सतरंगी इंद्र-धनुष, ठीक उसी समय गऊशाला का गोबर घुला पानी किनू ग्वाले की गली की हरेक रसोई में घुसता है।

फिर बाईलेन भी है। और गली दर गली। दुर्बल हाथ की शिराओं की तरह टाली की छत के नीचे-नीचे चोर गलियों में अदृश्य पिछलता रास्ता।

2

गली में घुसते ही सबसे पहले भग्न मकान में मुहल्ले के लड़कों का जिमनास्टिक का अखाड़ा, शुरू में इधर से शाम के बाद अकेले चलने का साहस नीला नहीं जुटा पाती थी। सेहत बना रहे फिर भी लड़कों का लड़कपन नहीं गया। लड़की देखी नहीं कि सीटी बजाने लगे।

शुरू-शुरू में बदन में आग लग जाती थी इन लोगों का तौर तरीका देखकर। इन लोगों में से किसी को बुलाकर अच्छी तरह डपट देना अच्छा होता। परंतु अंत तक साहस नहीं कर पायी। क्रमश: आंच धीमी हुई, कौतुक जागा। बेचारे सीटी बजाकर ही सुख पाते हैं, पायें। बदन में छाला तो नहीं पड़ जायेगा।

इसके बाद से ही शुरू होता है किराये वाले मकानों का सिलसिला। निचले तल्लों के कमरों में कनस्तर और काठ की पेटियों का गोदाम, एक तल्लों में एक कमरे में एक परिवार।

जगह कम उससे भी कम रोशनी और हवा। शुरू-शुरू में गली से बड़े रास्ते तक पहुंचते-पहुंचते नीला की आंख झुलस जाती थी।

कसरत के अखाड़े के बाद प्रमथ पोद्दार की सोने की दुकान। पेरिस ज्वेलरी। प्रो. श्री प्रमथ नाथ पोद्दार। आलोकविहीन धुंयें से भरे कमरे में लोहे की छड़ों के घेरे में टिमटिमाती बत्ती जलाकर प्रमथ पोद्दार काम कर रहा है, इस कदर मग्न होकर सिर झुका कर काम करता है ये आदमी, लेकिन रास्ते में किसी के भी पैरों की आवाज सुनकर सिर उठाकर देखता है ठीक, मन हो तो बातचीत भी करता है।

सबसे ज्यादा असुविधा हुई थी प्रमथ ने जिस दिन जबर्दस्ती नीला के साथ बातचीत की थी। कमरे से बाहर नहीं निकला। खिड़की के पास आ गया था।

पसीना चुहचुहा रहा है, रोयेंदार नंगी छाती, जंगले पर रखी मिचमिचाती दो आंखें, चपटी नाक थोड़ी-सी बाहर निकल आयी है, केवल जीभ भर लपलपाने से तस्वीर पूरी हो जाती है। एक विचित्र-सी हंसी हंसकर प्रमथ ने पूछा था, "नमस्कार। आप लोग शायद इस मुहल्ले में नये हैं ?"

अनिच्छा के बावजूद भी नीला को थोड़ी देर रुकना पड़ा था। बोली थी, "हां।"

—"कौन-सा मकान छ बटा एफ ?"

—"हां।"

—"एक तल्ले पर कोने वाला दो कमरा तो ?"

इस आदमी को सब खबर है, हैरत है।

—"अच्छा फिर बातें होंगी, एक मुहल्ले के ही रहने वाले हैं जब, हें—हें।"

कुछ जल्दी-जल्दी पांव बढ़ाती हुई नीला चली आयी थी लेकिन अचानक दांत के नीचे कंकड़ आ जाने जैसी किन-किनाती स्थिति नहीं दूर हुई। चोर कोठरी के भीतर से जंगले पर रखी आंख-नाक रोयेंदार छाती चिड़ियाखाने में देखे किसी मानवेतर जीव का चित्र मन में उभर आया था।

बाद में नीला इतना और जान पायी कि प्रमथ और भी कितनी खबर रखता है। सीखचें घिरे घर में बैठकर केवल सोना-चांदी ही नहीं तौलता, बाहर की तमाम खबरों का उसे पता है। ठीक उस गणक की तरह जो टेबल पर लकीर खींच कर दुनिया की तमाम बातें बता सकता है, प्रमथ ऐसा ही है। धूप, गंध शब्द-मय पृथ्वी की सब छाया उसके घर के आईने पर पड़ती हैं।

उम्र कितनी है प्रमथ की ? दिन-रात ठंड से अंधेरे कमरे में स्वयं को बंदी बना कर जिसने रखा है, उसकी उम्र का अनुमान लगाना क्या इतना सरल है। बाद में उजाले में भी प्रमथ को नीला ने कितनी बार देखा है, हस्तरेखाओं के बिछे जाल की तरह प्रमथ का ललाट, आंख के किनारे तक आती अनेक रेखायें। सारी उम्र उन्हीं रेखाओं के जाल में टिक गयी हैं, अड़तीस या अट्ठानबे, कहना मुश्किल है।

परिचय के कुछेक दिन बाद ही प्रमथ खुद ही नीला के पिता के साथ मेलजोल कर गया था।

चाय लेकर आयी नीला।

"मेरी लड़की है।" शिवव्रत बाबू ने कहा।

चाय के प्याले से घूंट भरते वक्त सुड़ुक-सुड़ुक जैसी आवाज करता है प्रमथ—नीला ने ध्यान दिया था।

प्रमथ ने कहा, "मेरे साथ बातचीत हो गयी है। बिटिया को स्कूल आते-जाते बराबर देखता हूं।"

"स्कूल में नहीं, कालेज में। सेकेंड इयर।" पिता ने कहा।

"एक ही बात है। उस जमाने का छात्रवृत्ति फेल हूं न, सो मेरे लिए क्या तो स्कूल और क्या तो कालेज।"

हंसी रोकने के लिए दूसरी ओर मुंह फिरा लिया नीला ने।

प्रमथ ने फिर कहा—"अंधेरी कोठरी में रहता हूं, महाशय, लेकिन सब देखता हूं। इस मुहल्ले में कुछ भी मेरी जानकारी के बगैर हो ही नहीं सकता।"

नीला कमरे से बाहर निकल आयी थी फिर भी प्रमथ की अंतिम बात उसके कान में पहुंची—"इतनी बड़ी लड़की को घर में बैठा कर पढ़ा-लिखा रहे हैं, आपके साहस का जवाब नहीं। पहला जमाना होता तो कब का ब्याह हो गया होता। जवान लड़की को घर में बैठाये रखने का रिवाज नहीं था न उन दिनों।"

दोनों कान झनझना उठे नीला के। इस अशिक्षित और गंवार आदमी के साथ पिताजी इतनी सारी बातें क्यों कर रहे हैं।

सटे-सटे कमरे। प्रत्येक कमरे में लटकता ताला। किरायेदार के नाम पर केवल नीला का परिवार।

"जानती है, खानदानी मकान है—इसका एक इतिहास है।" प्रमथ के जाने के बाद शिवव्रत बाबू ने कहा था। नीला केवल हंस भर दी। इतिहास है। अर्थात् अतीत। जिनका वर्तमान नहीं है, मात्र उनका ही इतिहास होता है, अंत तक केवल वे ही इतिहास को याद रखते हैं।

जैसे शिवव्रत बाबू। नीला के पिता।

पापुलर पार्क से उतरते-उतरते अब आ पहुंचे हैं किनू ग्वाले की गली तक दूरी कम भी तो नहीं है। एक बारगी सपाट, ढालू रास्ता। बीच में साल भर की ब्रेक जनी हुई भवानीपुर उसी किराये के मकान में, उसके भी बाद महीना भर के करीब वहुबाजार के मकान में। कहीं भी टिकना नहीं हुआ। पैर फिसलते-फिसलते आ पहुचे हैं इस अंधी गली की खोह में एक तल्ले में सीढ़ियों के बगल के मात्र दो कमरों में सपरिवार।

पापुलर पार्क के दिन धीरे-धीरे धुंधले पड़ते जा रहे हैं। क्षितिज पर हठात बारिश शुरू होने जैसे आकाश जैसा। अनुभूति में ही नहीं, याद भी बाकी नहीं रहेगी कुछ दिनों बाद।

बहुत-बहुत साल पहले चोटी झुलाती हुई जो लड़की अपनी कार में बैठकर स्कूल जाती थी, आज मैली-सी साड़ी पहने धंसे गालों के बीच क्या उन दिनों की याद संपूर्णत: वैसी ही है? भवानीपुर के मकान में तो कालेज की बस आती थी। यहां आने पर पैदल ही चलती है, कभीकभार ट्राम।

जिस दिन आना हुआ था मकान की सूरत देखकर ही मन मिजाज खट्टा हो गया था। और कितनी असह्य रास्ते की गंध। नाक पर कपड़ा रख कर चलना पड़ता था। किसे मालूम रास्ते के किनारे वाले छोटे कमरे में बैठा प्रमथ मुस्काया था या नहीं। हो सकता है सोचा हो, अभी तो नाक पर कपड़ा रख रही हो बहन-जी, रखो। लेकिन कितने दिन। शुरू-शुरू दो-चार दिन सभी इस मुहल्ले में आकर नाक पर कपड़ा रखते हैं। उसके बाद धीरे-धीरे और सभी अनुभूतियों की तरह घ्राणेंद्रियां भी अभ्यस्त हो जाती हैं, पता तक नहीं चलता।

सदर की चौखट पार करने पर एक बड़ा आंगन लांघना पड़ता है, फिर एक गलियारे के नीचे से गहरे अंधेरे के अंत में सीढ़ी।

इतना-सा रास्ता पार करना कितना भयानक था पहले। चलने से दीवाल प्रतिध्वनित होती, चबूतरे के मोटे खंभों के चारों ओर चमगादड़ फड़फड़ाते पुराने जमाने की शान शौकत का यह मकान, शायद नाट्य स्थल था। इस मुहल्ले के पुराने बशिंदे प्रमथ से पूछने पर पता चलता कि अभी उसी शाम इस नाट्यगार में कत्थक नृत्य हुआ है। पूजा के समय इसी आंगन में स्टेज बनाया गया था। चारों ओर से बरामदे को घेर कर चिक का पर्दा लगाया गया था। उसके बाद बसाक बाबुओं के बीच हिस्सेदारों को लेकर झगड़ा हुआ। अंततोगत्वा अपने हिस्से की मारपीट पाने तक बंद हो गया।

इसके भी बाद कुछ दिनों तक छोटे बाबू लोगों ने शौक से बैडमिंटन खेलने का कोर्ट बनाया था। झाड़फानूस हटाकर तेज पावर वाले लट्टू भी लगवाये गये थे। फिर वह भी कब का बंद हो गया। बसाक बाबू लोग न जाने कहां एक-एक कर छिटक पड़े। दरवाजे-दरवाजे पर ताले लटकने लगे। आंगन में दरार पड़ गयी, नाट्य मंदिर के खंभों पर रहने के अधिकार को लेकर चमगादड़ और चिड़ियों में चिरंतन कलह आरंभ हुआ। दीवालों ने दुबारा रंग-रोगन फिर नहीं देखा, पलस्तर झड़ने लगा धीरे-धीरे, खिड़की दरवाजे की लकड़ियां हवा लगते ही कांपने लगतीं।

ज्यादा गौर से देखने पर पता लगता है, मकान बैठा जा रहा है धीरे-धीरे। पूरा मकान ही बैठ रहा है कि नहीं, तत्क्षण समझ में आने का उपाय नहीं है, लेकिन बैठ रहा है इसमें कोई संदेह नहीं। सदर दरवाजे से आंगन तक का हिस्सा दो-तीन इंच नीचा हो गया। एक के बाद एक वर्षा जाती है, आंगन में काई जमती

जाती है, दरकती दीवालों पर वट वृक्ष की नन्हीं-नन्हीं कोपलें उग आयी हैं और इसी के साथ-साथ मकान भी धंसा जा रहा है थोड़ा-थोड़ा। जमीन के नीचे शायद इस वयोवृद्ध ईंट, लकड़ी तथा चूना सुर्खी के लिए अद्भुत रूप से एक समाधि तैयार हो रही है।

सीढ़ी पर चढ़ते-चढ़ते नीला अवाक हो उठी। सीढ़ी के ठीक नीचे कोने वाले कमरे के अंदर से रोशनी आ रही है। यही तो कुछ महीने हुए यहां आये, अपने घर के अलावा और किसी घर में प्रकाश देखा हो याद नहीं पड़ता। क्या बात है सोचते-सोचते नीला ऊपर चली आयी।

कमरे के बीचोंबीच पर्दा तानकर बनाया गया पार्टीशन। भीतर का हिस्सा अंतःपुर। जमीन पर मां की अनंत शैया। दमा का रोग।

"कैसी हो मां।" कपड़े बदलते-बदलते नीला ने पूछा। प्रत्युत्तर में निमाननी हल्के से मुस्कराई। माने तकलीफ अभी क्या। असली तकलीफ तो शुरू होगी रात के अंतिम समय।

"निचले तल्ले के कमरों में बत्ती जलती देखी मां।"

"अच्छा," निमाननी ने बुझे स्वर में उत्तर दिया, "कोई नया किरायेदार आया होगा।"

लालटेन की बत्ती थोड़ा उकसाकर नीला किताब-कापी खोल पढ़ने बैठी। खिड़की के पास बिछी चटाई। सामने छोटी-सी चौकी। वही टेबल का भी काम देती है।

"पढ़ने बैठ गयी क्या ?" मां ने पूछा।

नीला लाजिक की किताब खोलकर फेलेसी का एक रहस्य सुलझा रही थी, बोली, "हूं।"

"धूना नहीं देना है, लक्ष्मी के सामने दीया बत्ती नहीं करना है ?"

गर्दन घुमाई नीला ने, "क्यों भाभी नहीं है ?"

"पता नहीं बेटा। लड़का आफिस से आते ही उसको लेकर पता नहीं कहां निकल गया।"

वाह, तो घूमने निकले हैं। नीला के माथे पर की कुछ रेखायें सिकुड़ गयीं किताब कापी बंद कर वह उठ खड़ी हुई। आज की पढ़ाई यहां खत्म।

घर आते ही कपड़ा बदल चुकी थी, इस बार उससे भी खराब साड़ी जल्दी-

जल्दी पहनी नीला ने। एकाध जगह से फटी, इधर-उधर हल्दी के दाग चूल्हा सुलगाया। चावल धोकर चढ़ाये इसके बाद देर तक एकटक चूल्हे के धूयें को देखती रही।

हठात पीछे किसी की छाया पड़ते ही नीला ने मुड़कर देखा। उसके बाद कुछ देर तक पलक नहीं झपका सकी। दुबला-लंबा चेहरा, साधारण-सी एक रंगीन साड़ी पहने हुए, किंतु पहरावे में एक असामान्य सुरुचि। आधे माथे तक घूंघट। रंग ? टाट झूलते रसोई घर की मद्धिम रोशनी में वह समझ में नहीं आया।

दुबले-पतले चेहरे पर दोनों होंठ एकाएक हिल उठे, "आपके घर में एक थाली होगी, जरा दीजियेगा ? हम लोग नीचे तल्ले के नये किरायेदार हैं। अभी तक सामान वगैरह नहीं खोला गया है।"

बिना कुछ कहे नीला ने एक थाली आगे सरका दी। तेज चलती हुई नयी बहू सीढ़ी से उतर गयी। अकस्मात नीला को ख्याल आया दो बातें करनी उचित थी बहू से, बैठने को कहना उचित था। नयी आयी है, शायद परिचय बढ़ाने आयी हो, हो सकता है थाली मांगना बहाना भर हो। सच में बड़ी अभद्रता कर बैठी।

नीला ने निश्चय किया कि कल सबेरे जाकर खुद परिचय कर लेगी।

परिचय के लिए जाना नहीं पड़ा। दूसरे दिन सुबह-सुबह मुंह धोने के लिए नीचे जाते ही नल पर बहू से मुलाकात हो गयी।

रात में केवल एक बार ही देखने से क्या होता है, बहू ने नीला को ठीक पहचान लिया था।

"नमस्कार", दोनों हाथ जोड़कर बहू ने कहा, "लगता है आपकी नींद अभी ही खुली है ?"

"नहीं" जम्हाई लेते हुए नीला ने कहा, "बहुत देर पहले ही खुली है। आप नहा-धो चुकी ?"

"हां जल्दी-जल्दी नहाना-धोना निबटा लिया बाथरूम नहीं है। खुला नल-हौज है, सभी के उठ जाने पर नहाने में दिक्कत होगी।"

"शुरू-शुरू में," नीला ने कहा, "सभी को होती है, हम लोगों को भी होती थी। अब तो आदत पड़ गयी है।" कहकर जरा मुस्कराई। जैसे इस मकान में बंद बाथरूम के न होने की शर्म नीला को ही हो।

एक हाथ में धुले कपड़े उठाये बहू ने दूसरे में पानी भरी एक बाल्टी ली।

"अच्छा चलूं। आइयेगा न हमारी तरफ थोड़ी देर बाद,—आपका तो शायद कालेज होगा।"

नीला ने कहा, "कैसे जाना आपने ?"

हल्के हल्के हंस उठी बहू ।"सभी खबर रखती हूं। कल दोपहर से इस मकान में आयी हूं। सांझ के बाद आपके पिताजी से परिचय हुआ वे शायद घूमने जा रहे थे। आपका नाम तो नीला है न ?" नीला ने गर्दन हिलायी।

"आपने मेरा नाम तो पूछा ही नहीं।" थोड़ी देर रुक कर बहू ने कहा, "मेरा नाम शांति है।" कुछ न कुछ कहना ही था इसलिए नीला ने कहा, "नाम अच्छा है।"

"छोटा है, लेकिन पुराना सा है, है ना ?"

"कहां पुराना है," नीला ने सांत्वना देते हुए कहा।

और साथ ही क्षोभ भरी दीर्घश्वास छोड़ उठी बहू—"और नाम—भला औरतों का कोई नाम होता है। वह नाम तो कब का धुल पुछ गया है।"

"धुल पूछ गया है ? क्यों ?"

हाथ की पानी भरी बाल्टी नीचे रख कमर के पार कस कर बांधे गये आंचल को खोलकर शांति ने माथा पोंछा। उसके बाद आश्चर्यमिश्रित गले से बोल उठी, "अरी भैया जायेगा नहीं ? ओह आप अभी कुवांरी हैं, स्कूल कालेज के खाते में असली नाम ही लिखा है, उसी नाम से सब बुलाते हैं। इसलिए समझती नहीं शादी हो जाती तब कोई शांति थी कभी, कौन याद रखता है ? अब मैं केवल मणि बाबू की बहू हूं, थोड़ा भरे मुंह से कहा जाय तो मणींद्र बाबू की पत्नी विलायती कायदे से मिसेज सान्याल। शादी के बाद शुरू-शुरू में वे भी मुझे शांति कह कर बुलाते थे, लगता है आजकल वे भी मेरा नाम भूल गये।"

दोपहर एक बजे से क्लास थी। कालेज जाते समय नीला ने एक बार नीचे के घर में झांककर देखा। देखा कि खिड़की के पास बैठकर शांति कुछ बुन रही है। नीला को देखकर बुनना बंद कर कहा, "आओ न, कालेज जा रही हो ?"

तुम की अंतरंगता नीला के कान से बच नहीं पायी। लेकिन जवाब देते समय तुम की बाधा आ गयी। हजार हो शांति ब्याहता, मांग में सिंदूर, माथे पर घूंघट, उम्र में भी कुछ बड़ी ही।

चौखट पर खड़े-खड़े ही नीला ने जवाब दिया, "हां, अब बैठूंगी नहीं समय नहीं

है। खाना पकाना हो गया आप लोगों का ?"

"खाना तो बना नहीं भाई।"

"बना नहीं, ये क्या।"

"हम लोगों का खाना होटल से आता है। वे सुबह से निकले हैं, अभी तक नहीं आये।"

"अरी मैया, इतनी देर तक बिना खाये पिये बैठी हैं ?"

"कहां देर हुई है अभी। लगता है वे आ गये।"

कहते न कहते जूते की मच-मच आवाज सुनायी दी। धोती कुर्त्ता पहने लंबे बाल वाले एक सज्जन किसी ओर न देखते हुए सीधे कमरे में चले आये। एक हाथ में चीनी मिट्टी के कुछ बर्तन दूसरे हाथ में एक टिफिन कैरियर।

नीला थोड़ा हट कर खड़ी हो गयी। शांति के साथ आंखें भी मिलीं एक बार। शांति ने माथे का घूंघट और खींच लिया था। नीला की उत्सुक आंखों को उत्तर मिला घूंघट के पीछे आंखों से। नीला ने समझा यही है मनींद्र सान्याल। शांति के पति।

3

बस से जल्दी-जल्दी उतरते साड़ी के फाल से सैंडिल उलझ गयी थी, किसी तरह ठोकर खाते-खाते नीला बची। लेकिन सिर उठाते ही दिमाग में कांटे सा चुभने लगा। इस चौरस्ते के कम से कम हजारों लोगों ने देखा होगा। जबर्दस्ती की सहानुभूति और दूर से आती टिटकारियां दोनों ही असह्य हो उठीं। एक किताब और दो कापियां छिटक कर गिर पड़ी थीं, किसी ने उठाकर उसके सामने कर दीं,

"माफ कीजिएगा, ये सब आपकी हैं।"

नीला की ही हैं। लेकिन जवाब कौन दे। किसी तरह किताब संभालकर जब गली तक पहुंची तब उसके पांव कांप रहे थे। छिः छि: छिः। थोड़ी और सावधानी

से वह क्यों नहीं चलती फिरती।

"अरे बेटी। साड़ी कैसे फट गयी ? गिर गयी थी शायद।" प्रमथ पोद्दार की आवाज। ऊपर से नीचे देखने पर नीला को पता चला कि साड़ी का निचला हिस्सा ठीक पाड़ के ऊपर से बहुत कुछ फट गया है। आश्चर्य, प्रमथ की आंखों से क्या कुछ भी नहीं छिपा रहता। यद्यपि पेटीकोट ठीक-ठाक है फिर भी प्रमथ को अभी तक उस छोटी कोठरी से अपने को देखते पाकर शर्म से झुक गयी नीला। किसी तरह यह थोड़ा-सा रास्ता खत्म हो तो बचे।

चौखट पार करते ही दूसरे दिनों की तुलना में आज की सफाई आंखों में लग गयी। इंच-भर धूल और कूड़े कचरे से भरा आंगन आज जैसे झकझका रहा हो। अंधेरे गलियारे के नीचे घुसते ही आज धूल-भरे जाले उसके आंचल से नहीं उलझे, झांक कर देखा, शांति हाथ में झाड़ू लिये नल के पास काई साफ कर रही थी। आंखें मिलते ही हंसी का आदान-प्रदान हुआ, बातें नहीं हुईं।

सीढ़ियां चढ़ने पर पहला कमरा ही है भाई भाभी का। लगता है आज शायद घूमने नहीं निकले। कल बाहर से सांकल लगी थी आज भीतर से। शायद गपशप हो रही है।

अपने कमरे में घुसते ही मां की कराह कान में पड़ी। "कौन नीली ? एक ग्लास पानी देगी मुझे ?"

"तुम्हारा बुखार आज लगता है बढ़ा है मां ?"

प्रत्युत्तर में मां थोड़ी देर खांसती रही। इसके बाद अनिच्छित सी फंसी आवाज में बोली, "वोई दुपहर बाद से। कब से प्यास लगी है—।"

मां को पानी लाकर दिया नीला ने। खीझते से स्वर में बोली, "क्यों तुम्हारी बहू तो थी। उसे नहीं बोल सकीं ?"

पूरा ग्लास खत्म कर करवट बदलते-बदलते ही निमाननी ने थके स्वर में कहा, "बहू क्या इस घर में थी।"

कपड़े बदल कर उतारी हुई साड़ी को देर तक तहाती रही नीला। उफ, बहुत फट गयी है, रफू भी होगा कि नहीं। साड़ी को अच्छी तरह तहाकर यत्न पूर्वक तकिये के नीचे रख दिया नीला ने। बाहर आने-जाने के लिए यही एक मात्र और अच्छी साड़ी बची है। और सभी शौकों की छटनी करने के बाद अभी भी थोड़ा कुछ बच रह गया है ? बाहर आने-जाने के लिए एक साड़ी कम से कम जरूरी है,

और जब कालेज में पढ़ रही है तो बाहर निकलना ही पड़ेगा। ऐसे घर की लड़की होकर भी कालेज में पढ़ रही है। यह भी क्या एक विलासिता है, अनमनी सी होकर बालों में कंघी करती हुई नीला ने सोचा।

थोड़ी देर बाद ही अमिता इस कमरे में आयी। मोटी-मोटी आंखें, फुला कर बनाये गये बाल, आते ही इधर-उधर देखने लगी। जैसे कुछ खोज रही हो। नीला उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देख रही है, देखकर आश्चर्यमिश्रित हंसी से बोल उठी, "अरे ननद जी कब आयी ?"

सारी दुपहर-शाम ट्राम, बस, कालेज, कामन रूम करते-करते दिमाग तो वैसे ही खराब रहता है।

सीधे सादे उत्तर न देकर नीला ने कहा, "तुम क्या खोज रही हो भाभी ?"

"जरा सा दूध भाई। कल से बड़ी सर्दी जुकाम हो गया है, थोड़ी सी चाय पियूंगी। दूध कहां रखा रहता है भाई ?"

"तुम इस घर की बहू, दूध कहां रखा रहता है, जानती नहीं ?" कड़े स्वर में एक तीखी हंसी का लटका देकर कह पड़ी नीला।

पूरी दो छींक को अपने आंचल में समेटते हुए अमिता ने मानो अपने ठंड लगने की सत्यता को प्रमाणित करना चाहा। थोड़े अभिमान, थोड़े अनुरोध के स्वर में बोली, "बड़ी सर्दी लग रही है भाई।"

"उस कोने में दूध रखा है ले लो, मां की बाली में थोड़ा दूध मिलाना होगा, सब मत लेना। भैया को भी सर्दी लगी है शायद, लगता है वे भी चाय पियेंगे ?"

"तुम्हारे घर में आकर शायद किसी को बीमार नहीं होना चाहिए ननदजी," दूध लेकर जाती-जाती अमिता बोली। "अचानक मेरे चाचाजी आये हैं इसलिए। नहीं तो अपनी सर्दी के लिए दूध मांगने नहीं आती।"

नीला कुछ जवाब देगी ये सोचकर कुछ देर खड़ी रही अमिता। उसके बाद जैसे हताश होकर बोली, "खुद चाहे जैसे भी रहें, मैके के लोगों के सामने तो जरा संभलकर चलना पड़ता है ननदजी, नहीं तो—"

अमिता की अंतिम बातें सुन नहीं पायी नीला।

आश्चर्य इस मकान की छत है, उस छत पर चढ़ा भी जा सकता है। गंगापानी का नल है दो तल्ले पर, पीछे से काठ की सीढ़ी बिलकुल खुले आकाश की सीमा को छूता हुआ उसका सिरा।

यहां आकर केवल शहर का शोरगुल ही कान में नहीं आता, अपने एकांत में मन का उद्वेलन भी सुना जा सकता है। अट्टालिकाओं की बाधा पाकर आंखें केवल लौटकर नहीं आतीं, सिर ऊंचा कर और ऊपर भी देखा जा सकता है, वहां है आसमान का स्निग्ध ममत्वपूर्ण नीलापन। और बीच-बीच में है हल्की-हल्की बहती हुई हवा। ये गली किनू ग्वाले की हो सकती है, ये छत नहीं। मुक्ति के इस खुले आंगन में पूरा शहर ही मानो एकाकार हो उठा है। केवल शहर ही क्यों, इस हवा का हाथ पकड़कर शहर की सीमा पारकर नदी का स्त्रोत पकड़े-पकड़े मानो पहुंचा जा सकता है दिशाहीन सागर तक, उत्तर दिशा में शेष होती हुई पहाड़ों की सीमा तक। ये छत नाप-जोख के बाहर है।

भाभी के साथ जरा-सी बात लेकर झगड़ा कर अब जैसे मन खराब हो गया नीला का। छि: छि: इतनी छोटी-सी बात पर दिमाग खराब हो सकता है आदमी का, इतनी साधारण-सी घटना को लेकर तर्क-वितर्क हो सकता है। नीला की खुद की तबीयत भी तो अच्छी नहीं है. वह ही यदि उसके कमरे में चली जाती, अमिता को अदरक देकर एक कप चाय मांगने से खुश ही होती। फिर ?

अमिता के प्रति इस असंतुष्टि का कारण शायद कुछ और है, नीला ने मन-ही-मन सोचा। उसकी, पिता की, मां की ? केवल भाई को छोड़कर इस परिवार का और कोई भी राजी-खुशी स्वीकार नहीं कर पाया अमिता को। संपूर्ण स्वीकार के बीच भी जैसे कहीं अस्वीकार का कांटा चुभा हुआ है। और अमिता भी जैसे सब समझ गयी है। वह भी चली जाना चाहती है। किंतु अकेली जायेगी नहीं, भाई को लेकर जायेगी।

मां-बाप की असंतुष्टि का कारण जानती है नीला। इस परिवार की जब चरम दुरावस्था थी, पांव फिसलकर लड़खड़ा रहा था पापुलर पार्क से भवानीपुर, भवानीपुर से बहूबाजार, वहां से किनू ग्वाले की गली—तब उन लोगों ने देखा था देवव्रत की ओर। लायक लड़का, वह यदि चाहता तो इस अधोगति से उद्धार कर सकता था। किंतु कहां कर पाया। साधारण-सी एक नौकरी का जुगाड़ जरूर कर लिया, किंतु जरूरत की तुलना में लंगोटी या कमर भर कपड़ा।

और प्राय: उन्हीं दिनों भाई ब्याह कर ले आया अमिता को। अमिता उस परिवार से आयी है जिन्हें सब कुछ नष्ट हो जाने के बाद कुछ पाने की आवश्यकता कभी नहीं पड़ी।

लेकिन देवव्रत ? वह तो इसी परिवार का लड़का है वह क्यों बदलता जा रहा है। मोरनी के मन बहलाव के लिए मोर पंख और नृत्य है किंतु ये सोचकर औरत के लिए आप भी क्या स्नाबरी की पूंछ लगायेगा, नंगा नाच करेगा मनो विलास के लिए ? इस मकान की चौखट पर पैर रखते हुए भाई का माथा शर्म से झुक जाता है ससुराल वालों के सामने अपने को इस मकान में रहने वाला कहते हुए सिर कट-सा जाता है और नीला ये भी मन-ही-मन जानती है कि भाई इस मकान से भागना चाहता है। इस मकान को वह और सहन नहीं कर पा रहा है। ये गरीबी यह धुंआं, ये दमघोटू वातावरण।

वह फिर भी सह सकता है अमिता नहीं सह सकेगी। उनके पिता के पास रुपया है, चाचा लोग उद्योगपति, मामा लोग नौकरी पेशा। दामाद को वे लोग खींचकर ले जायेंगे। और भाई भी तो तैयार हुआ बैठा है। हंस बनने के लिए कौआ एकाग्र मन से उद्धत है।

वैसे अमिता के पास बहुत बुद्धि है। पहली मुलाकात में तो लगा था कि मानो निश्छलता की मूर्ति हो। किंतु फिर सहज नहीं हो सकी, कहीं-न-कहीं एक अलगाव-सा जरूर है। उसके साथ कहीं हंसकर बात करने की चेष्टा करती है अमिता तब दोनों होंठ भर हिलते हैं, हंसी नहीं निकलती। घर का जितना भी काम करती है सब अनाड़ी की तरह। कहीं चाय बनाते समय प्लेट टूटी है तो कहीं चूल्हा जलाते समय हाथ में पड़ गया छाला।

शुरू-शुरू में तो खूब मजा आया नीला को। अमिता के अनाड़ीपन पर हंसी भी। किंतु कुछ दिन बाद संदेह हुआ कि यह अनाड़ीपन स्वाभाविक नहीं है, इसीके नीचे चल रही है कुशल अभिनय की छुरी। चालाकी से जैसे अमिता समझाना चाहती है कि अपने हाथ से चाय बनाना या चूल्हा जलाने की आदत नहीं है उसकी केवल इस परिवार में आकर ही—

बहू के आने का दिन अभी तक नीला को याद है। रहते थे तब बहूबाजार में। वह पुराना मकान। मोटरगाड़ी उस गली में घुस नहीं सकती थी। सदर दरवाजे पर मोटर के हार्न की प्रतिध्वनि गूंज उठी घर के शंखनाद में।

भाई भाभी कमरे में आकर बैठे। हंसी-मजाक होता रहा थोड़ा-बहुत। किंतु कोई मजा नहीं। नीला आजकल की लड़की, ये सब व्यवहार विशेष रूप से मालूम नहीं। फिर भी सबसे ज्यादा खराब लग रहा था नयी बहू के खराब लगने को

देखकर। वह जो तब से आकर बैठी है सिर नीचे झुकाकर, अभी तक मुंह नहीं उठायी अमिता, मुंह से आवाज भी नहीं निकली।

मोहल्ले की लड़कियों ने आकर खामोशी तोड़ी। मां कृतज्ञ भाव से दरवाजे के पास खड़ी थी। नीला उनको एक ओर बुला कर ले गयी। दबे स्वर से पूछा, "बहू बात क्यों नहीं कर रही है मां ?"

"लगता है बड़ी शर्मीली है मां-बाप सभी को छोड़कर आयी है इसलिए भी हो सकता है मन खराब हो।"

उसी समय पता नहीं क्या हुआ नीला कठोर स्वर में बोल उठी थी, "समझो नहीं जब मां तब चुप रहो। असल में तुम्हारी बहू का मन नहीं खुश हुआ।"

निमाननी सूखे गले से बोली थी, "खुश नहीं हुआ क्यों। उसने तो देबू को पसंद करके ही ब्याह किया है।"

"ओह मां," झुंझला कर नीला बोली थी, "तुम क्या जरा भी नहीं समझती ? दूल्हा पसंद आया है तुम्हारी बहू को लेकिन घर नहीं। छोटी-सी जगह बत्ती नहीं, हवा नहीं. आते ही वह किस तरह ऊब गयी ! देखती नहीं ?"

"नीली जरा नीचे आयेगी ?"

अचानक पीछे घूमकर देखा नीला ने। चोर की तरह भाई कब आकर पीछे खड़ा हो गया, पता ही नहीं चला। लोग जैसे शीशे के बर्तन को हाथ में लेते हैं; उसी तरह सावधान होकर दबे गले से देवव्रत कहता है, "एक बार नीचे उतरेगी ? चाचाजी तुझे बुला रहे हैं।" देवव्रत के केश कायदे से संवारे हुए हैं, बदन पर झकझकाती गंजी तब भी उसका चेहरा देखकर हंस पड़ी नीला। भाभी के साथ इसी प्रकार सिर झुकाकर बातें करते-करते हाव-भाव में ऐसा एक दास्य भाव आ गया है भाई में, चलती भाषा में जिसे कहा जा सकता है, भीतू-भीतू बुद्धु-बुद्धु।

"चाचाजी, कौन ?" भौं उठाकर पूछा नीला ने।

"चाचाजी—माने उसके चाचा तेरी भाभी के। अविनाश बाबू, याद नहीं ?" डांट खाकर मानो बात गड़बड़ा गयी देवव्रत की।

"ओ, तो मुझे क्यों बुला रहे हैं ?"

"गाना सुनना चाहते हैं। सुना करते हैं न तेरे गले की प्रशंसा।"

"इस मकान में आकर तो तुम्हारे ससुरालवालों को भागो-भागो ही लगी

रहती है। ये सज्जन गाना सुनना चाहते हैं—इनका संगीत प्रेम तो कर्म नहीं भैया।"

शर्म से सिकुड़ते चेहरे से देवव्रत ने कहा, "तू केवल कड़ी-कड़ी बातें करना जानती है। भद्रता नहीं जानती। चाचाजी कितने बड़े आदमी हैं ये तो जानती है ? खुद घर आकर गाना सुनना चाहते हैं।"

काठ की सीढ़ी से नीचे उतरते-उतरते फिक से हंस पड़ी नीला, "बड़े आदमी हैं तो इसमें मेरा क्या भैया। तुम्हारे ये चचिया ससुर मुझसे शादी करके पटरानी बनायेंगे क्या ?"

इतनी देर बाद अब देवव्रत समझ पाया, नीला ने सभी बातें मजाक में कही थीं। बोला—"ये क्या कहती है।"

जैसे थी उसी तरह ज्यों ही नीला भाई के कमरे के अंदर जाने को हुई, देवव्रत कह पड़ा—"साड़ी बदल कर नहीं आ सकती।"

हाथ नचाती हुई मुद्रा में नीला ने कहा, "साड़ी-वाड़ी नहीं है भैया। गंदी साड़ी पहनी लड़की से गाना सुनना यदि अच्छा नहीं लगता हो तो इतना झमेला करने की जरूरत नहीं। भले आदमी को खाली चाय पिलाकर राजी-खुशी विदा कर दो।" थोड़ा-सा रुककर फिर बोली। ' उससे अच्छा तो यही होगा कि इसी गंदी साड़ी को ही पहन कर भले आदमी को गाना सुनाया जाय। खुश हो जाय तो बख्शीश में एक नयी साड़ी तो मिल ही सकती है, क्यों भैया।"

पांव छूकर प्रणाम कर रही थी कि अविनाश बाबू ने हाथ पकड़ कर रोक लिया—"रहने दो, रहने दो, बैठो।"

सड़ी गर्मी में चटाई पर बैठे-बैठे पसीने से नहा उठे अविनाश बाबू। चेहरे का पाउडर बह-बहकर दाढ़ी बने गालों के रोमकूपों में जम रहा था। अधपकी दाढ़ी की समस्या को अविनाश बाबू ने दोनों बेला दाढ़ी बनाकर पूरी कर ली थी। लेकिन सिर के बालों में खिजाब लगाना पड़ता था। ओह् खिजाब गर्मी में बहता नहीं है क्या ? नीला सिर नीचे किये होंठ दबाकर मन-ही-मन हंसी क्या मजेदार दृश्य होता वह।

भाभी के ये चाचा विधुर हैं, नीला जानती है। रुपये की गर्मी में पत्नी के शोक को तो भुलाया जा सकता है, लेकिन उम्र नहीं छिपायी जा सकती। असफल प्रयास में चेहरे की रेखाएं और भी कुत्सित हो उठी हैं।

कौन-सा गाना गाये यही सोचते-सोचते थोड़ा समय निकल गया। एक राम-प्रसादी गाने की सोच रही थी नीला, अंत में एक भजन गाया। "वाह्-वाह।" गाने की समाप्ति पर अविनाश बाबू ने कहा, "क्या गाना है। प्रेम का ऐसा माधुर्य···।"

"प्रेम तो नहीं," हारमोनियम सरका कर नीला ने कहा, "भक्ति।"

"वाह, वाह। प्रेम मतलब ही तो भगवत प्रेम।"

भगवत प्रेम का मतलब ही तो भक्ति। गद्गद् कंठ से अविनाश बाबू ने कहा, "कहां सीखा गाना –" इधर-उधर देखते हुए बोले, "इस घर में तो—'रेडियो नहीं है'।" मन की बात जैसे पूरी करती हुई नीला बोली, "ग्रामोफोन भी नहीं है। इधर-उधर से जितना हो सकता है सीख लेती हूं।"

नीला को कितने मेडेल इनाम में मिले हैं, देवव्रत ने फेहरिस्त सुनानी शुरू की थी, अविनाश बाबू वह सब सुने भी कि नहीं इसमें संदेह था। अचानक बोल उठे, "मैं एक रेडियो भिजवा दूंगा : मेरे पास तो दो हैं।" दीर्घ श्वास छोड़कर जम्हाई, लेते हुए बोले, "है ही कौन जो सुने।"

"इस घर में तो इलेक्ट्रिक ही नहीं है।" नीला बोल उठी, "रेडियो गूंगा बना पड़ा रहेगा।" नहीं है ? ये जानना नया नहीं होते हुए भी अविनाश बाबू मानो आश्चर्य में पड़ गये। ठीक है, "तब बैटरी-सेट से काम नहीं चलेगा ?"

"बड़े चमत्कारी हैं हमारे ये चाचा।" अविनाश बाबू के चले जाने के बाद बड़े उत्साह से अमिता ने कहा। "बचपन से ही ये मुझे इतना प्यार करते हैं। इस मकान में आकर सब देख-सुनकर कहा है उससे—तुम्हारे भाई को अपने बिजनेस में लगायेंगे।"

नीला ने सोचा, तो ये बात है। भैया अपनी फिक्र में हैं। नीला ने भी अपना कर्त्तव्य पूरा किया है, गाना सुनाकर देवादिदेव को संतुष्ट किया है। भैया का ठिकाना तो उनके बिजनेस की पालवाली नौका है। लेकिन नीला समझ नहीं पायी कि उसकी भूमिका क्या है ?

कमरे की सूरत ही बदल दी है शांति ने। खिड़की दरवाजे में पुरानी साड़ी का रंगीन पर्दा। ईंट लगाकर ऊंचा किये गये तख्त पर बिस्तर, नीचे एक बक्सा। एक कोने में लकड़ी की एक छोटी टेबल, बेंत की एक कुर्सी। खिड़की के पास एक छोटी चौकी।

अभाव है तो केवल प्रकाश का। दिन में तो रोशनी है ही नहीं, रात में भी जहां तक होता है शांति बत्ती नहीं जलाती है। पूछने पर खाली हंस देती है। रात में अंधेरा रहे, यही तो भगवान की इच्छा थी ? तब खामखा बत्ती जलाकर उनकी इच्छा के विरुद्ध क्यों जायें।

वह भी कोई तर्क हुआ। शांति फिर खुद ही कहती है। "असली बात क्या है भाई जानती हो, मेरी आंख खराब है। लालटेन की तेज रोशनी मुझे बर्दाश्त नहीं है। इसलिए कमरे को ठंडा रखती हूं। क्यों, वह तो टेबल पर मोमबत्ती जल रही है, सारा कमरा तो दिखायी दे रहा है, नहीं दे रहा है ?"

लेकिन रसोई ?

रसोई तो शांति बनाती नहीं है। दिन में भी नहीं, रात में भी नहीं। होटल से खाना आ जाता है। खर्चा तो ज्यादा है, लेकिन झमेला तो कितना कम है। किसी समय भात का मांड़ उबलने से शांति का पांव जल गया था, तभी से मनींद्र ने इंतजाम किया था।

घृणा नहीं लगती है ?

घृणा। होटल के खाने से घृणा कैसी। इतना ही यदि मीनमेख निकालने लगे भाई तो इस मकान में ही रहने से घृणा होती। इस प्रकार जिंदा रहने में भी। बल्कि होटल का खाना ही अच्छा है। आज भात और मछली की तरकारी, कल पूरी और रसेदार सब्जी, पैसा रहने पर किसी दिन मुर्गे का मांस और पाव रोटी। अरुचि का तो सवाल ही नहीं।

सब समझ गयी है नीला, खाली समझ नहीं पायी कि मनींद्र सान्याल का काम-काज क्या है। किसी दिन तो सारा दिन गायब, किसी दिन सारे दिन-रात घर में बंदी।

शांति से पूछने पर भी सीधा उत्तर नहीं मिलता है। खाली हंसती है। "क्या पता भाई, मर्द आदमी की बाहर की क्या खबर है ? मैं घर-गृहस्थी लिए बैठी हूं।"

नीला की देखादेखी—देखादेखी कि नहीं पता नहीं, नीला लोगों के मन में हुआ कि देखादेखी—शांति भी अपने घर को दो भागों में बांटती है पर्दा लगाकर। भीतर वाले का नाम है अंत:पुर।

उस दिन पर्दे के उस तरफ से हल्की-हल्की बातचीत का आभास पाते ही नीला उठ पड़ी। बोली, "मैं चलती हूं भाई शांति दी।"

"अभी ही तो आयी हो, इस समय ?"

"लगता है आपके घर में बाहर से कोई आया है ।"

"बाहर से कोई ? कहां, नहीं तो । उस तरफ तो वे अकेले हैं ।"

"हल्की-हल्की बातचीत जो सुन रही हूं ।"

शांति इस बार हंस पड़ी । उस तरफ वे अरुंधति को लिये बैठे हैं, पता नहीं ?

"अरुंधति कौन ?"

शांति और भी हल्के स्वर में बोली "उनकी मानसिक स्त्री । आजकल तो उसी को लिये पड़े हैं ।" इसके बाद समस्या का समाधान करती हुई खुद ही बोली, "उनकी नयी कहानी की नायिका । थोड़ा-थोड़ा करके लिखते हैं और खुद ही पढ़-पढ़कर सुनते हैं कि कैसा हुआ है । उस समय मुझे भी उस तरफ जाने का हुक्म नहीं है ।"

नीला पहली बार समझ पायी कि मनींद्र बाबू साहित्यकार हैं । शांति बोली, "तुम्हें पता नहीं था शायद । अरी भैया, वे आधुनिक साहित्यकारों के बीच एक शीर्ष व्यक्ति हैं, और तुम नाम भी नहीं जानती थी ?"

शांति ने उसी दिन नीला को मनींद्र की लिखी हुई दो किताबें दीं ।

उस दिन कालेज नहीं था, सारी दुपहर नीला ने कभी छाती के नीचे कभी सिर के नीचे तकिया रखकर दोनों किताबें पढ़कर खत्म कीं । पढ़ते-पढ़ते कभी खुद ही कर्णफूल लाल हो उठते । आधुनिक भाषा में खोयी हुई आंखें ठोकर खाती ही रहीं, लेकिन कौतूहल बढ़ता ही गया । उस सीधे-सादे दिखने वाले आदमी के पेट में इतनी लंबी दाढ़ी, ऐसा गंदा प्लाट भी सोचा जा सकता है ?

पढ़ना खत्म होते ही झटपट सीढ़ी लांघते नीचे उतर आयी दोपहर ढले । दो-एक स्थान पर उसे बड़ा अस्वाभाविक लगा था, दो एक चरित्र उसे असंबद्ध से लगे । सोची कि शांति के साथ उनपर विशद् आलोचना करेगी ।

जाकर देखा कि शांति खिड़की के पास चुपचाप बैठी है । पर्दे के उस ओर वैसी ही गुनगुन करती आवाज ।

"अभी लिखना खत्म नहीं हुआ ?" नीला ने फुसफुसाकर पूछा. "तब मैं चली ।"

"जाओगी क्या । बैठो ।" शांति ने सूखे स्वर में कहा ।

"लगता है खाकर उठते ही लिखने बैठ गये ।"

"खाना-पीना तो हुआ नहीं ।"

"ये क्या।"

झटसे नीला के हाथ से दोनों किताबें लेकर शांति दूसरी ओर मुंह घुमाकर किताबों को ठीक-ठाक रखने लगी। "कहानी समाप्त होगी, किसी संपादक को देकर रुपया हाथ में आयेगा, तभी तो खाना मंगवाया जायेगा भाई।"

ठीक उसी समय पर्दा सरकाकर मनींद्र शांति को कुछ कहने इस तरफ आये। नीला को देखकर क्षणभर इधर-उधर करके अपने लिखने वाले कोने की ओर चले गये।

धूमिल प्रकाश में नीला ने देखा, बिना नहाया, अनखाया चेहरा, बढ़ी हुई दाढ़ी, किंचित रक्ताभ आंखें।

ऐसा बेमानी भी आदमी होता है।

कहानी उस दिन समाप्त हो गयी थी इसमें कोई संदेह नहीं। रुपया भी मिला था। नहीं तो रात नौ बजे शांति आकर नहीं पूछती कि नीला के चूल्हे में आंच है या नहीं।

"क्या बात है ?" नीला ने पूछा।

"उनके कुछ दोस्त आये हैं। उन लोगों को चाय पिलानी है। केवल चूल्हा ही नहीं है। वे लोग शायद सारी रात ताश खेलेंगे।"

कौन-कौन ? वे, कवि इंद्रजित, पब्लिशर सदानंद और—

"आप सो सकेंगी ?" नीला ने पूछा, "पर्दे के उस तरफ इतने सारे लोग—असुविधा नहीं होगी ?"

"अब असुविधा कैसी।" शांति थोड़ा हंसी, "मुझे अभ्यास हो गया है।"

लेकिन दूसरे दिन सबेरे ही पर्दे के उस ओर से हल्की-हल्की आवाज सुनकर नीला आश्चर्यचकित हो गयी।

"आज भी लिख रहे हैं क्या ? कहानी कल समाप्त नहीं हुई ?"

"कहानी तो कहानी, कहानी का रुपया तक कल ही खत्म हो गया। कल सब हार गये हैं न। आज सुबह से उठकर इसलिए तो लिखने बैठे हैं—रुपया तो लाना होगा।"

"क्या कह रही हैं। आज फिर आप लोगों का खाना-पीना नहीं होगा ? चलिये शांति दी, आप हम लोगों के यहां थोड़ा-सा खा लीजियेगा।"

मंद-मंद हंस दी शांति।

"उसकी जरूरत नहीं होगी भाई, वह इंतजाम कर लिया है।"

क्या इंतजाम वह भी समझा दिया शांति ने।

"वे हारते जरूर हैं, लेकिन दोस्त तो जीतते हैं। और सुबह जाते समय वे लोग जीत का सब रुपया चुपचाप मुझे दे जायेंगे, ये सोचकर ही तो उन लोगों को अपने घर में जुआ खेलने देती हूं।"

"आप तो बड़ी हिसाबी हैं शांति दी ?"

"हिसाबी नहीं होऊंगी भाई ? नहीं तो तुम क्या सोचती हो इस अनिश्चित कहानी लिखने के भरोसे ही किसी की गृहस्थी चलती है, नहीं, चलायी जा सकती है ?"

4

जितनी भी दूर क्यों न हो, पापुलर पार्क से किनू ग्वाले की गली, लेकिन शहर तो एक ही है। जैसे एक ही मकान का पहला तल्ला और पांचवा तल्ला। एक आदमी हवा में उड़ रहा है, धूप में हंस रहा है, और एक आदमी गर्मी में पसीने से नहा रहा है, अंधेरे में कांप रहा है, मानो इतने बड़े मकान को कंधे पर रखने के कारण ही।

इसीलिए सौम्य जिस समय आकर सामने खड़ा हुआ, नीला को प्रत्युत्तर में नमस्कार करना पड़ा।

"पहचान सकी हो नीला ?"

"हां। डर था आप नहीं पहचान पायेंगे।"

"इसके बाद ? यहां ?"

"हम लोग तो इसी तरफ रहते हैं सौम्यदा।"

"ओ हो, सुना तो जरूर था कि तुम लोग आजकल इस तरफ हो। क्या तो एक रास्ता है—नाम ठीक याद नहीं पड़ रहा है—कैसा तो एक क्वेंट होम"।

"किनू ग्वाले की गली ।" नीला ने खुले गले से उच्चारित किया ।

"यस ।" सिगरेट जलाकर सौम्य ने कहा, "याद आया । आऊंगा एक दिन तुम लोगों के यहां । मासीमां कैसी हैं ? मौसा जी ? तुम्हारे भाई ? कैसे जाना पड़ता है बोलो तो जरा । नंबर कितना है ?"

"छ बाई एफ ।"

"छ बाई एफ, किनू ग्वाले की गली ?" पाकेट से फटा हुआ एक कागज का टुकड़ा निकालकर सौम्य ने पता लिख लिया—"अब डायरेक्शन दो तो ।"

नीला ने साध्यानुसार बताया ।

"ठहरो, ठहरो, जस्ट ए मिनिट । छ नंबर रूट वाली बस के टर्मिनस के बाद महेश अड्डि स्ट्रीट ? उसके बाद क्या नाम बताया—गंगापद, गंधा, गंधा क्या ?" कुंठित हंसी हंसते हुए सौम्य ने कहा, "इस तरफ आकर तो एकदम गड़बड़ा जाता हूं, ए क्वीर एरिया कितना गंदा और कितना टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता—पाकेट में कंपास न होने से दिशा ही भूल सकता हूं । हां, उसके बाद ? गंधापद श्री मनीस्ट्रीट से किस तरफ जाना होगा ?"

स्थिर आंखों से उसकी ओर देखते हुए नीला ने ठंडे गले से कहा, "आप पहचान नहीं पायेंगे सौम्यदा, मैं समझ गयी हूं ।"

"क्या कहती हो । इतना भी नहीं हो पायेगा । अच्छा, मैंने पता तो लिख लिया है, अब देखना एकदिन आकर हाजिर हो जाऊंगा ।"

"देखूंगी ।" धीरे, बुझे स्वर में नीला ने कहा ।

"फिर ? तुम कालेज में पढ़ रही हो न ? अच्छा है, खूब अच्छा है । अच्छा, अब चलूं नीला ।"

सौम्य के जाने के बाद नीला अन्यमनस्क मन से कुछ देर खड़ी रही । पैर के पास में पता नहीं कैसा एक कागज हवा से फड़फड़ा रहा है । झुककर उठा लिया ।

वही टुकड़ा । जिस पर सौम्य ने कुछ देर पहले ही नीला का पता ठिकाना लिखा था ।

छोटा-सा कागज, उड़ गया । उड़ना ही था । आज नहीं तो कल । नीला अपने ही मन में हंस पड़ी ।

बहुत देर तक कागज को मुट्ठी में बांधे मन ही मन कुछ निश्चय करती रही ।

उसके बाद सामने के लैंपपोस्ट की ओर देखते हुए कागज को रास्ते पर फेंक दिया।

भूल से ही भले सौम्य ने पते को फेंक दिया हो तो क्या। कागज उसके पास रहने पर भी क्या सौम्य किसी दिन आता। अथवा किनू ग्वाले की गली के सीलन भरे कमरे में नये सिरे से देखता नीला को ?

तंग, गंदा मुहल्ला। सौम्य ने मिठास से अवश्य कहा था क्वेंट,। क्या पता इस कुत्सित पृष्ठभूमि में नीला भी सौम्य को कुत्सित लगी या नहीं।

सौम्य किसी भी दिन नहीं आयेगा, नीला जानती है। न सौम्य, न मनन, न मनीश। उन लोगों का अध्याय पापुलर पार्क में ही समाप्त हो गया है।

शर्मीले चेहरेवाला जो लड़का पापुलर पार्क में उनका पड़ोसी बनकर आया था कुछ वर्षों पहले, वही तो है सौम्य। यही सौम्य। मुफसिलों के जज थे सौम्य के पिता। रिटायर होने के बाद कलकत्ता में आकर मकान बनवाया।

बिलकुल बगलवाला मकान, उस मुहल्ले में बहुत कम लोग रहते थे। आया, खानसामा बावर्ची, दरबान को छोड़कर प्रत्येक मकान में तीन-चार लोग। फिर मकान का मतलब कम-से-कम दो बीघा। परिचय दिया। उस समय कितना विनयी और सीधा-सादा था। यह सौम्य जानता था, जज हो चाहे बैरिस्टर, इस मोहल्ले में वे सब अपस्टार्ट ही हैं। इस समाज में रहने पर नीला को पारपत्र की आवश्यकता होगी ही।

किसी भी दिन साहस नहीं किया, मनमानी नहीं की, फिर भी सौम्य से विवाह की आशा की कुछ-कुछ चर्चा मां ने की थी। ज्यादा आपत्ति नहीं थी, थोड़ी-सी आनाकानी थी कि, सौम्य ने पढ़ाई-लिखाई नहीं की थी। उससे भी कुछ आता-जाता नहीं था, दो हाथ मिलकर एक हो जाते, यदि—

उसी समय बीच में मनन वहीं आ जाता तो। मां-बाप से किस प्रकार के घनिष्ठ संबंध हैं, ये बड़ी बात नहीं थी, असली बात थी मनन अमेरिका में रह आया था। एक मोटर में मनन लगातार दो महीने नहीं आया नीला के घर पर। शुरू-शुरू में आश्चर्य होता नीला को। अंत में समझ पायी थी। मनन डेंबर की एक आटोमोबाइल कंपनी का एजेंट था। वह युद्ध पूर्व का समय, औरतों के साड़ी बदलने के फैशन से भी जल्दी पुरुषों की मोटर का माडल बदल रहा था—आज रात जो आधुनिकतम है, कल सुबह वही पुराना।

नया-नया माडल है, ट्रायल के लिए निकला है मनन। नीला को आश्चर्य लगता।

एकबार मनन के साथ आसनसोल तक गये थे वे लोग। मनन, नीला और मां।

लौटते समय मां ने जब गाड़ी की तेजगति की अचानक प्रसंशा करते हुए कहा—"ये ही तो लेटेस्ट—है न मनन ?" तब मनन ने बिना सिर घुमाये, थोड़ा हंसकर उत्तर दिया, "क्या पता, मासीमां। कलकत्ता लौटते-लौटते देखूंगा शायद यह भी पुराना हो गया है। लोग एक पालकी की तरह पुराने जमाने के रैल्कि (भग्नावेशेष) के जैसे देखते हैं।

"क्या कह रहे हो मनन, इसी कुछ घंटे में ?"

इतने दिनों तक किसी प्रकार आशा बांधी थी सौम्य ने। जिस दिन सुना कि नीला वगैरह आसनसोल गये थे, उस दिन से आना-जाना एकदम कम कर दिया। कम करके क्या अच्छा किया था ? स्पर्द्धा में डटा नहीं था। इससे बढ़कर सौम्य ने ठेके पर एक स्ट्रीमर क्यों नहीं किराये पर ले लिया, आकर कहा क्यों नहीं। चलो रामगंज—नीला क्या उस समय इंकार कर सकती थी।

उसके बाद मनन ने ही एक दिन बात उठायी।

"आना-जाना मैं भी कम कर दूं, सोचता हूं।"

"क्यों ?"

"रोज-रोज आने का कोई मतलब होता है ?"

"उससे क्या, आप तो आत्मीय हैं, मां के मामा के—"

हंस उठा था मनन। "रहने दो, हिसाब मत करो, किनारा नहीं मिलेगा। बहुत दूर का रिश्ता है। अच्छा नीला," आवाज को अचानक खूब धीमें गंभीर करके मनन ने कहा था, "इसे खूब नजदीक का भी तो बनाया जा सकता है।"

हो सकता ये संबंध बहुत नजदीक का ही हो जाता इतने दिनों में, यदि नीला को मैट्रिक की परीक्षा नहीं देनी होती तो। उसके बाद आये दुर्दिन। शेयर-मार्केट में बहुत दिनों से ही नाम था, बाबूजी के पके केशों की संख्या रोज एक-दो करके बढ़ रही थी, उसके बाद बैंक फेल हो गया।

एक रात में ही बाबूजी के सारे केश सफेद हो गये। पापुलर पार्क का प्रासाद बंधक (गिरवी) पड़ा हुआ है, यह पता चला और भी कई महीने बाद। फर्नीचर

नीलाम हुआ। भवानीपुर के घर में चला आना पड़ा।

पापुलर पार्क से आने वाले दिन भवानीपुर का पता मांग रखा था उन लोगों ने मनन, सौम्य, मनीश। वादा किया था कि बीच-बीच में जायेंगे।

फिर भी मनन को तो मां ने आने के समय आंखों में आंसू भरकर कहा था। "तुम तो आना बेटा। मुसीबत के ऊपर मुसीबत। नहीं तो दोनों कब के एक हो गये होते। खैर, चाहे जितनी भी तकलीफ क्यों न हो, जैसे भी होगा, इस अगहन में ब्याह का इंतजाम करूंगी। तुम आना।"

मनन ने भीगे, हल्की आवाज से कहा, "जरूर आऊंगा, मौसी।"

कहना ही बहुत है, मनन आया नहीं।

मां ने एक बार खबर भेजने की बात उठाई थी, भवानीपुर में आने के बाद। बाबूजी ने कड़े स्वर में रोका था। बाबूजी के नहीं रोकने पर नीला खुद ही रोकती।

उसके बाद अगहन महीने में सुना गया, मनन फिर विदेश को पड़ गया है। मोटर नहीं, इस बार एवियेशन एक्सपर्ट होकर आयेगा। इसके पहले ही एक फ्लाईंग क्लब का मेंबर हो गया था मनन। खुद एक 'मंथ' भी खरीदा था। प्रायः दिल्ली बांबे की उड़ान भरता। पुरी जाता समुद्र स्नान के लिए।

केवल मनन ही क्या। पापुलर पार्क के सौर मंडल में से कोई भी क्या आया था भवानीपुर के मकान में? रेवा-मौसी, अचला बुआ, मल्लिका, ललिता? कोई नहीं। इतनी बातचीत जिनके साथ, इतनी घनिष्ठता आत्मीयता, सब के मन में बाकी रह गया केवल नाम, अतीत के पन्नों पर, किसी समय का जाना हुआ होकर। इतनी पार्टी, इतनी पिकनिक, इतना एक्सकर्शन—पापुलर पार्क से एक निमंत्रण भी किसी के पास से नहीं आया।

फिर भी अच्छा ही हुआ, उसी बीच नीला कालेज में भर्ती हो पायी थी, बहुत कुछ भूल पायी थी पढ़ने लिखने में मन लगाकर।

बाबूजी, फिर भी संभल जाने का स्वप्न देख रहे थे। लेकिन शॉपुर के गोदाम में भी आग लग गयी तब एक दम से टूट गये। पके केश भी झड़ने लगे एक-दो करके। गंजे दिखाई देने लगे। गोदाम इंश्योर किया हुआ था, कुछ रुपया मिल गया। वे लोग चले आये बहूबाजार।

भवानीपुर का मकान भी छोटा था। लान नहीं था, चबूतरा था। छोटा, फिर

भी पूरा तो था। बहूबाजार में चार कमरों का पचास रुपया। गली में, जगह कम। उसी का नाम फ्लैट।

उसके भी बाद कीनू ग्वाले की गली। बाबूजी ने कहा, "लड़के-लड़की की पढ़ाई में खर्च होने के कारण भाड़ा नहीं जुटा पाऊंगा। जमा किये हुए इनमें थोड़े बहुत रुपये का ही तो आसरा है। खत्म होते कितनी देर लगती है।"

इसके भी ऊपर डाक्टर का खर्च था। बहूबाजार के मकान से आते ही मां बीमार पड़ गयी। थोड़ी-थोड़ी खांसी, सांस लेने में तकलीफ, छाती की हड्डियां निकल आयी हैं।

थोड़े दिन बाद पता चला दमा है। मां ने बिस्तर पकड़ लिया।

5

शांति के कमरे में उसी इंद्रजीत कवि को नीला ने कई बार देखा है।

कवियों को लेकर उसके मन में कोई उत्सुकता कभी रही हो ऐसी भी बात नहीं। कविता से भी नहीं। पाठ्यपुस्तकों में, पत्रिका के पन्नों में नीचे की ओर तुक मिलाई हुई कुछ पंक्तियां अवश्य रहती हैं और पुरस्कार वितरणों में उन्हीं सब का पाठ करके शाबाशी भी पायी जाती है।

लेकिन अपनी आंखों से एक कवि को नीला ने पहली बार देखा। क्रमबद्धता से जो तुक मिलाते हैं, वे साधारण-सी अपनी वेशभूषा भी ठीक नहीं रख सकते, आश्चर्य लगता। मुड़े-चुड़े कुर्ते के साथ मैली-कुचैली धोती बुझा-बुझा-सा चेहरा।

शांति के कमरे में एकाध बंगला पत्र-पत्रिका थी। उन्हीं के पन्ने उलटते-उलटते इंद्रजीत की चार कविताओं पर नीला की नजर पड़ी।

"शांति दी, इंद्रजीत राय ही तो आपके घर आते हैं न ?"

"नहीं तो ऐसे बेघरबार और कितने लोग होंगे। लगता है तुम वही सब ऊल-जलूल पढ़ रही हो भाई ?"

ऊलजलूल है कि नहीं क्या पता, नीला एक अक्षर नहीं समझ पायी। उसका चेहरा-पहरावा क्यों इतना बेतरतीब है उसका कारण समझ में आ रहा है कुछ-कुछ।

जैसी कविता, वैसा ही तो कवि होगा। कविता ही कितनी ठीक-ठाक है।

लड़का लेकिन पका-पकाया है इसमें कोई संदेह नहीं। जैसी सब बातें लिखीं हैं, सब मिलाकर भले ही उसका कोई अर्थ नहीं निकले, अलग-अलग बातें तो समझती है नीला। किसी सज्जन व्यक्ति की कलम से ऐसी सब बातें निकल सकती हैं ? ऊपर से कहा जाता है शिक्षित। बी. ए. पास करके एम. ए. और लॉ पढ़ा जा रहा है। पढ़ाई हो रही है कि चूल्हे की छाई। कलकत्ता की मेस में बैठकर बाप का रुपया उड़ाया जा रहा है।

शांति हंसती है। "कह लो, भाई कह लो, मैं तो बोल-बोल कर परेशान हो गयी हूं। हमलोगों की सुनता है क्या, तुम कालेज में पढ़ती हो, तुम्हारी बात यदि मान ले थोड़ी-सी।"

पीठ पीछे जिसको लेकर इतना सब होता है, अचानक उसके आ जाने पर कविता को लेकर हंसी मजाक उन दोनों का ही बंद हो जाता है। पहले-पहल नीला भागना चाहती, लेकिन अब शांति के अगल-बगल ही बैठना पड़ता।

लेकिन ठीक-ठाक लिखने के लिए इंद्रजीत को धमकायेगा कौन, नीला खुद ही सोच में पड़ जाती। सिर झुका कर पत्रिका के पन्ने उलटते-उलटते ही नजरों से देखती, वही एक छटांक का आदमी, अभी भी चेहरे पर वयस्कता के चिन्ह नहीं आये हैं, और दाढ़ी बनाने के असफल प्रयास में गाल और गला क्षत-विक्षत हो गया है। उस पर मुंह बाये देख रहा है। लेकिन इतनी निष्पाप आंखें, गुस्सा नहीं किया जा सकता।

और तभी से नीला भी जिस पन्ने को उल्टाई नहीं है, इंद्रजीत की कविता है उस पन्ने पर, वही खोलकर आंख के सामने रखी है, इसका होश क्या नीला को भी है ?

"पढ़ ली उसको ?"

प्रश्न शर्मीले गले से, सहमी दृष्टि।

जल्दी से मोड़ कर रखकर नीला ने कहा, "हां।"

"कैसी लगी ?"

आशान्वित आंखों को ओर देखकर इतने दिनों का कड़ी-कड़ी बातें सुनाने का रिहर्सल गल गया।

"अच्छी तो है।" भिचें गले से नीला ने कहा, "लेकिन थोड़ी कठिन है। अच्छी तरह समझ नहीं आयी।"

तुरंत उत्साह पाकर इंद्रजीत जो कविता समझने की नहीं है, मुख्यत: अनुभव की, मस्तिष्क की नहीं, हृदय की, इतनी सब कठिन-कठिन बातें समझाने बैठेगा, यदि ऐसा पता रहता तो नीला अपना कोई मत ही नहीं देती।

और उसी समय शांति उस कमरे में नहीं आ जाती तो इंद्रजीत की बातों का घड़ा कभी खाली नहीं होता।

"भाषण हो रहा है ?" लंबी-लंबी आंखों से हंसते हुए शांति ने पूछा। साथ ही साथ एकदम चुप हो गया इंद्रजीत।

"कुछ नहीं, ये, ये ही एक आध," कहा किसी प्रकार। फन मिट्टी में लोट गया है।

शांति से इंद्रजीत को डर लगता है यह आसानी से समझ में आता है। लेकिन वह भय बड़ा विचित्र है। अंधेरे में काली बिल्ली को देखकर चौंककर पसीना-पसीना हो उठने वाला डर नहीं, घोर रात में नदी के किनारे अकेले बैठे रहने वाला डर। डर के मारे शरीर कांप भी रहा है, ऊपर से अच्छा भी लग रहा है। मतलब खाली डर नहीं, विस्मय भी।

नहीं तो इतना कष्ट उठाकर मेस में रहने का पैसा बचाकर कोई रात जागकर जुआ खेलने आता है ? ये बात अच्छी तरह से जानते हुए भी कि जीतने पर वह पैसा अपने पास नहीं रहेगा, किसी के हाथ में रखकर सुबह सबेरे निकल पड़ना होगा निःशब्द ?

किसी-किसी दिन इसी बीच कहां-कहां से घूमता-घामता आता है मनींद्र। खाने का डोंगा शांति के हाथ में देकर थक कर जमीन पर ही सो पड़ता है।—"बैठो नीला। इंद्रजीत को आये कितनी देर हुई ?"

"बस थोड़ी ही देर हुई है। आपका वह ठीक हुआ ?"

जम्हाई लेता है मनींद्र। आंख मींचे-मींचे ही उत्तर देता है। "ना। कुल में दस परसेंट रायल्टी देना चाहता है। एडवांस कुछ नहीं देगा। कहता है बाजार

मंदा है।

नये लिखे उपन्यास को लेकर मनींद्र कुछ दिनों से पब्लिशरों के पास दौड़ा-धूपी कर रहा है, नीला जानती है।

"तो तैयार नहीं हुआ ?"

"नहीं। अंत में अपने सदानंद को दूंगा। उसके पास विज्ञापन तक का खर्चा नहीं है, किताब नहीं निकाल पायेगा, जानता हूं, लेकिन वह मुझे धोखा नहीं देगा। भारती प्रकाशन सत्रह परसेंट तक उठा था। लेकिन किताब अटका कर रख देगा यह सोचकर देने का साहस नहीं है। खुद का प्रेस नहीं, लेकिन ढेर किताबों का कांट्रेक्ट लिए है। उसी में जलधर पात्र का दो जासूसी उपन्यास है—गुंडा ऋषि सिरीज की किताब। विराजदत्त का नाटक भी है एक—वही, वही जो रंगपीठ में चल रहा है। पहले ये सब किताबें उसके बाद ही तो मेरी।" फिर आंखें मींचकर मनींद्र ने कहा, "सोचता हूं, मैं भी जासूसी कहानी लिखना शुरू करूंगा। बाहर से खूनी दुर्दांत, लेकिन भीतर से परोपकार का अवतार, इस प्रकार के अद्‌भुत पात्रों की कल्पना नहीं कर पाऊंगा।"

और कुछ दिनों तक इंतजार कीजिये, "इंद्रजीत अचानक जोर से बोल उठा, उसके बाद,"—

"उसके बाद तुम मेरी किताब छापोगे, क्यों ?" आंखें खोलकर मनींद्र थोड़ा हंसा, "घर से कितना रुपया आता है तुम्हारे पास ? तीस, चालीस ? मेस का उधार, कालेज की फीस, सिगरेट के खर्च के बाद कितना बचता है जो पब्लिशर होने का स्वप्न देख रहे थे ? बल्कि—"

प्लेट में खाने का सामान ले आयी थी शांति। इंद्रजीत के हाथ में देकर कहा, "बल्कि आप शादी कर लीजिये। पंद्रह रुपये में—"

मनींद्र उठकर बैठ गये, "आशा है कि शादी करेगा, लेकिन प्रतिज्ञा नहीं करेगा, ऐसा कोई कच्चा आइडियलिज्म तो तुम्हारा नहीं है इंद्रजीत।"

कुछ क्षण तक शांति के चेहरे की ओर बुद्धू की तरह देखता रहा इंद्रजीत। उसके बाद समोसा तोड़कर खाते-खाते मरी आवाज में कहा, "शादी ही कर लूं सोच रहा हूं।"

खाना-पीना होने के बाद इंद्रजीत ने कहा, "आइये मनिदा, थोड़ा ताश खेलें।"

"दो आदमी में ?" मनींद्र ने कहा, "जमेगा नहीं। फिर पैसा भी नहीं है।"

"माचिस की तीली तो है।" स्मित हंसी से शांति ने कहा।

"आइये तब ऐसे ही खेला जाय—ब्रिज, चार आदमी तो हैं।"

"मुझे खेलना नहीं आता है।" नीला ने कहा, "मेरे सिर में दर्द है।"

"तब चलिये थोड़ा घूम आयें। सिर दर्द ठीक हो जायेगा।"

"चलिये।"

तुरंत तैयार हो गयी शांति। पर्दे के उस तरफ से साड़ी बदलकर बाल बांध कर आयी। गहरा लाल पाड़ केवल जूड़े के किनारे तक ही रहा। "माचिस की तीली दीजिये एक," हाथ बढ़ाकर बोली इंद्रजीत से।

एक भी शब्द न कहकर पूरी डिब्बी ही समर्पित कर दी शांति के हाथ में। एक हाथ में आईना लेकर खिड़की के सामने खड़ी हुई शांति, सिंदूर की डिब्बी खोल कर तीली के सफेद भाग से बड़ी-सी एक बिंदी लगायी माथे पर। उसके बाद अपलक दृष्टि से इंद्रजीत की ओर देखकर कहा—"चलिये।"

"मनिदा उठिये।"

मनींद्र ने जम्हाई लेकर कहा, "मुझे थोड़ा लिखना बाकी है भाई, बस तुम लोग घूम आओ।"

नीला की ओर देखकर शांति ने कहा, "मैं तुरंत लौट आऊंगी। तुम इनको किसी समय एक प्याला चाय बनाकर भेज देना, भाई।"

ठीक आधे घंटे बाद ही बारिश थमी। खिड़की खोलकर कविता सोचने का साधन है क्या। बौछार से कमरा भीग जायेगा। लालटेन जलाकर चाय बनाने बैठी नीला। किंतु ऐसे में नीचे लेकर जाना आसान नहीं है। थोड़ी देर तक रुकी रही फिर माथे पर अखबार डालकर नीचे उतर आयी।

दरवाजा उढ़काये हुए मनींद्र लिख रहा है। "आओ नीला। चाय लायी हो?"

प्याला मनींद्र के सामने रखकर नीला बोली, "हां। शांति दी लौटी नहीं?"

"नहीं," बाहर की ओर देखकर मनींद्र ने कहा "ऐसी बारिश। कहीं अटक गयी होगी।"

बारिश रुक गयी। छंटे बादलों के बीच से थोड़ी चांदनी का आभास हुआ बाहर। उस समय भी भीगी ठंडी हवा चल रही है।

इंडियन इक्नोमिक्स की किताब सामने खोलकर ऊपर वाले कमरे में बड़ी देर

तक कान खड़े कर बैठी रही नीला, शायद शांति दी के लौटने की आहट सुने। बैठे-बैठे ही किसी वक्त जम्हाई आयी, आंखें बंद हो गयीं नींद में, लालटेन का तेल खत्म होकर पलीता दप-दप करके जल उठा।

बत्ती बुझाकर भी जागते रहने की कोशिश की थोड़ी देर, सोचा कि नीचे चुप-चाप पांव दबाकर देख आये।

लेकिन इतने दिनों की गर्मी के बाद आज पहली बार ठंडी हवा, सारे बदन के ऊपर मानो नींद का पहाड़ टूट पड़ा हो। छत का जमा हुआ पानी पाईप से नीचे नाले में गिर रहा है, बहुत देर तक उसी झर-झर आवाज को सुनती रही। उसके बाद वही आवाज सिर की थकी शिराओं की झिम-झिम में एकाकार हो गयी। और कुछ भी नहीं सुना गया।

शांति दूसरे दिन सुबह नल के पास दिखायी दी। कल जो साड़ी पहनकर घूमने गयी थी शांति, उसे साबुन से धो रही है।

"कल किस समय लौटी शांति दी ?"

"बहुत रात में। राम राम, क्या बारिश, क्या बारिश।"

"कितनी दूर गयी थीं ?"

"बहुत दूर। ट्रेन से डायमंड हारबर की ओर। जैसे ही उतरी वैसे ही बारिश शुरू हुई। देखती नहीं कितनी कीचड़ लगी है साड़ी में। गांव के जैसा, चारों ओर ऐसे ही अंधकार में, जले हुए छप्पर के नीचे दो घंटा—"

"डर नहीं लगा ?"

"किससे ?" मुंह दबाकर हंसती हुई शांति बोली, "इंद्रजीत से ?"

नीला ने सांप, बिच्छू की बात सोचकर डर की बात पूछी थी। लेकिन शांति उसी बीच बोलती रही, "किससे डर ? इंद्रजीत से ? वह तो एक छोकड़ा है।"

"फिर भी एम. ए. लॉ पढ़ रहा है। तेईस-चौबीस वर्ष का भी नहीं हुआ होगा ?"

"तेईस चौबीस ? तुम तो भाई मजाक करती हो। उम्र बढ़ाकर बोलना उस लड़के का स्वभाव है। कहीं भी ठौर नहीं मिलता है, न तो मर्दों के पास और न ही औरतों के पास।"

और भी जोर से साबुन लगाने लगी शांति। साड़ी में कल के लगे कीचड़ का एक भी दाग नहीं रहने पाये। बोली, "उसकी असल उम्र बीस वर्ष से एक दिन

भी ज्यादा नहीं है। जितना भी बढ़ा-चढ़ाकर क्यों न बोले। मैं शर्त बद सकती हूं नीला।"

भीगी साड़ी बदन में लपेट कर कमरे में जा रही थी कि कपड़ा बदलने के लिए —नीचे नल के पास कपड़ा बदलने में बड़ी असुविधा है—लौट आना पड़ा।

दरवाजे के ठीक सामने चटाई बिछा कर बाबूजी प्रमथ पोद्दार के साथ शतरंज खेल रहे थे।

बरामदे में खड़े होकर गमछा पहने-पहने ही पोंछना पड़ा। उसके बाद चिल्ला-कर भाभी को पुकारा—"भाभी, एक सूखी साड़ी तो दे जाओ भाई।"

बरामदे में खड़े-खड़े ही सुना, प्रमथ बाबूजी से कह रहा है, "कल नीचे की घर वाली बहू रानी बहुत रात में घूमकर लौटी, महाशय।"

"अच्छा।" शिवव्रत सिर नीचे किये चाल का हिसाब-किताब कर रहे थे, बात पर ध्यान नहीं दिये।

प्रमथ ने फिर कहा, "तब बहुत रात थी, आंधी पानी में मोड़ का गैसवाला लैंपपोस्ट टूट कर गिर गया। अचानक घुटने तक पानी को ठेलते हुए किसी की छप-छप आवाज सुनायी पड़ी। इतनी रात में कौन। देखा कि हम लोगों की इसी निचले तल्ले वाली मां लक्ष्मी—क्या बोलूं महाशय भीगी साड़ी लपेटे, हाथ में सैंडिल, आधे पैर तक साड़ी उठाकर—"

"चाल चलिये पोद्दार महाशय।" शिवव्रत बाबू ने सिर झुकाये ही डांटा।

"अब क्या चाल चलूंगा। वह मैं सोचकर ही रखा हूं। इस घोड़े की चाल से ही तो आपकी मात। ध्यान नहीं दिया क्या ?"

शतरंज का बोर्ड थैले में रखते-रखते प्रमथ ने कहा, "आइये एक दिन पासा खेला जाये। और भी जमेगा।"

"पासा ?"—शिवव्रत बाबू ने हंसकर कहा—"जिस खेल में युधिष्ठिर लुट गये थे।"

"उससे क्या हुआ, आप तो युधिष्ठिर नहीं हैं। और आपको डर कैसा ? युधिष्ठिर तो खेलकर लुट गये थे लेकिन आप तो लुटने के बाद खेल रहे हैं। वह, क्या कह रहा था, साथ में एक कम उम्र का लड़का, देखा नीचे वाली मां लक्ष्मी है।" "बड़ी अच्छी लड़की है," शिवव्रत बाबू ने कहा।

"अच्छी," मन-ही-मन शब्द को दुहराया प्रमथ, मन-ही-मन हंसा।

"बाबूजी," नीला की कठोर आवाज सुनायी पड़ी बाहर से, "सुनिये तो ।"

शिवव्रत बाबू के बाहर निकलते ही साथ, दबे असह्य गले से, जिससे प्रमथ न सुन पाये, नीला ने कहा, "उस बेकार आदमी को तुम सिर चढ़ा रहे हो ? बात करना नहीं आता है—"

किंकर्त्तव्यविमूढ़ भाव से शिवव्रत बाबू बालों पर हाथ फेरते हुए जैसे कैफियत दे रहे हों, बोले, "क्या करूं बेटी । आता जो है । शतरंज भी बढ़िया खेलता है । फिर मुझे भी तो किसी-न-किसी सहारे रहना होगा ।" ऐसे करुण नेत्रों से शिवव्रत बाबू ने बेटी की ओर देखा कि नीला के मुंह से आवाज नहीं निकली । छत पर कपड़ा सुखाने चली गयी ।

6

छत की कार्निश पर झुकते ही गली के मोड़ तक दिखायी पड़ता है । कल रात में बारिश हो चुकी है, लेकिन बादल अभी तक नहीं छंटे । किनू ग्वाले की सड़क बहकर कीचड़ हो गयी है ।

कालेज जाने का समय हो गया है, फिर भी नीला का मन नीचे के सीलन वाले कमरे में जाने को नहीं कर रहा है । आहा, जरा हवा तो बदन में लगे, थोड़ी तेज धूप ।

गली के मुहाने गाड़ी रोककर उतरे अविनाश । मोटर आ नहीं सकती । हाथ में धोती का कोर, पांव में पंप शू, हाथ का सामान संभालेंगे किस तरह । इधर-उधर देखे, खुले गले से पुकारा, "कुली ।"

एक झल्ली वाला आया । उसके सिर पर सामान लदवा कर अविनाश थोड़ा निश्चिंत हुए । रूमाल से चेहरा पोंछे । इसके बाद गाड़ी का दरवाजा बंद करके नीचे उतरे ।

इसके बाद कुली को पीछे आने को कहकर हाथ में धोती का छोर पकड़े बड़ी सावधानी से पैर दबा-दबा कर आगे बढ़ने लगे ।

आज कश्मीरी-शाल ओढ़कर आये हैं अविनाश, दस उंगलियों में छह अंगूठी, यूं ही आसमान में धूप नहीं है, नहीं तो छह उंगलियों की ज्योति बिखर पड़ती। और इसी में है मंत्र सिद्ध की हुई तीन अंगूठी। दुर्लभ पत्थर एक में लक्ष्मी को बांध कर रखा है, और एक का दीर्घायु होने का पूरा वादा। तीसरी एक औघड़ से मिली हुई है, उसमें पुनः यौवन प्राप्ति का आश्वासन है।

पैर फिसलते-फिसलते संभल गये अविनाश। कैसी कीचड़ है। और टूटे डस्ट-बिन के तले से कूड़ा-करकट से बह-बहकर गंदा पानी सारी गली में फैल गया है। तुरंत ही पालिश किया हुआ था पंप-शू पालिश चूल्हे में जाय, अब कीचड़ सूखे तल्ले में घुसकर चप-चप कर रहा है, जाने दो उसे मकान में जाकर पैर धोने से ही काम चलेगा। चुन्नट तो खैर हाथ में संभाल ली गयी, लेकिन कीचड़ छिटक-छिटक कर कांछ की क्या हालत हुई है, गर्दन घुमाकर देखने का साहस भी नहीं है।

रास्ता शेष हुआ। यही तो है छबाई डी, छ बाई ई के बाद ही है छबाई एफ। उसी छत की कार्निश पर कोई लड़की झुकी हुई है। आसमान में इतनी रोशनी नहीं है कि आंख झुलस जाय। इसीलिए अविनाश पहचान पाये कि नीला है। अमिता की ननद,—वही कालेज में पढ़ने वाली और बढ़िया गाना गाने वाली लड़की।

ऊपर देखते-देखते ही सदर दरवाजे की चौखट लांघने के लिए पैर बढ़ाया अविनाश ने। ठोकर लग गयी। एकदम से लुढ़क नहीं गये। एक पैर का जूता ही केवल निकल कर गिर पड़ा, धोती का छोर हाथ से फिसल कर कीचड़ में सन गया जरा-सा—ठीक जहां पर यत्नपूर्वक चुन्नट डाली गयी थी और—

और मुंह बाये रहने के कारण नकली दांतों की ऊपरी पंक्ति खुलकर निकल गयी रास्ते में नहीं, क्योंकि अविनाश ने लपक कर उसे पकड़ लिया। उसके बाद मुंह बाये हुए ही उसे मसूड़े में फिट करने में भी कुछ समय लगा।

त्रस्त आंखों से अविनाश ने एक बार और ऊपर देखा। लड़की तभी से झुकी हुई है कार्निश पर। देख तो नहीं लिया।

इसे अच्छी तरह समझने के लिये अविनाश मानो कुछ देर तक ताकते रहे, उसी तरफ। लगा कि लड़की ने हंसी छुपाने के लिये पीछे चेहरा घुमा लिया है। कहना यथेष्ट है—हंसी थी व्यंग्य भरी।

अमिता सीढ़ी के पास खड़ी थी। झल्ली से सामान उतरते ही खुशी-खुशी चेहरे से बोली—"ये सब क्या ले आये चाचाजी।"

छत से आकर नीला अमिता के पीछे खड़ी हुई थी। उसकी ओर कनखी से देखते हुए अविनाश बाबू कृतार्थ गले से बोले, "रेडियो है बेटी। बैटरी सेट वाला।"

"ओ मां, ये है क्या।" अमिता मानो गदगदा उठी, "आपको इतनी बातें याद भी रहती हैं। कब आप जुबान दे गये थे···

"जुबान देने पर मैं मुकरता नहीं बेटी," अविनाश बाबू ने कहा। और एक बार नीला को देखते हुए अनायास ही एक हाथ अपने थूथन के पास चला गया। दंत पंक्ति ठीकठाक तो है। नीला की आंखों में आंख डालकर देखा। नहीं चेहरे की रेखा में कोई विकार नहीं, आंखों की स्वच्छनीलमणि में नहीं है कौतूहल का नाम भी। लेकिन मन-ही-मन मुस्करा रही हो तो कैसे समझें। चश्मा नया, पावर भी ज्यादा है, लेकिन आंखें दोनों तो अड़तालिस वर्ष पुरानी हैं। अठारह-उन्नीस वर्ष की लड़की के मन की बात पढ़ना क्या चालीसी-आंखों के बस की बात है।

और एक बार थूथन पर हाथ फिराये अविनाश। ठीक ही है।

देवव्रत के साथ बिजनेस संबंधी बातचीत दो बातों में समाप्त हो गयी। उसके बाद एक तकिया छाती के पास लगाकर दीवार के सहारे बैठकर अविनाश ने आंखें बंद कर फर्माइश की, "गाना सुनूंगा अब।"

देवव्रत नीला को आकुल भाव से पुकारने लगा। नीला कमरे में नहीं घुसी। दरवाजे के बाहर खड़ी-खड़ी बोली—"मेरी क्लास है।"

"क्लास ? कितने बजे है क्लास ? कैसी क्लास? कुल एक गाना सुनाने में कितना समय लगेगा।"

"रेडियो तो लाये हैं। उसी को सुनिये ना।"

थोड़ी देर पहले ही एक एक्सीडेंट हो चुका है, अविनाश को ज्यादा मुंह खोल-कर हंसने का साहस नहीं हुआ। "क्या कहती हो। कहां की बात कहां। हजार हो रेडियो तो एक यंत्र है—यंत्र में क्या असली गले की तरह मिठास होगी। फिर कुछ भी कहो, गा रहा है एक आदमी कहां कितनी दूर से, और सुन रहा है एक आदमी पांच सात पचास मील दूर बैठा हुआ, आंख से देख नहीं सकते, केवल

कानों से सुन सकते हैं, उसमें मजा नहीं आता है। मन नहीं भरता है।"

"नौ तो बज गया है। स्टेशन नहीं लगेगा।" अमिता ने याद दिला दिया।

गाना अवश्य गाया नीला ने। गिन कर एक। लीन होकर सुन रहे थे अविनाश। नीला को उठकर खड़ा होते देख खांसे। एक बात प्रेषित करना है। इसीलिये इतने विचलित हैं।

अमिता की ओर देखकर कहा, "बेटी मैं, मैं चार पास लाया था। सिनेमा के। आज शाम का। तो तुम लोगों को समय होगा?"

"सच में चाचाजी, सच मैं?" खुशी से झूम उठी अमिता। "कौन-सा सिनेमा है चाचाजी? ओह, कितने दिन हो गये सिनेमा देखे।"

अविनाश ने एक नाम बताया। सुनकर और एक बार झूम उठी अमिता। "सिंदूर की संध्या, कितने लोगों से इसकी प्रशंसा मैंने सुनी है। आज ही संध्या की ट्रिप?"

"आज ही।" कलाई की घड़ी देखकर अविनाश ने नीला की ओर ताका। "तुम भी चल रही हो न।"

"नहीं।"

"नहीं!" धोती के छोर में कीचड़ लगा है नहीं तो अविनाश झट से चेहरे का पसीना पोंछ लेते।

देवव्रत ने भौंह चढ़ाकर कहा, "क्यों?"

असह्य गले से नीला ने कहा, "कहा तो, क्लास है।"

"क्लास है? वह तो चार साढ़े चार बजे तक। शाम को तू क्या करेगी?"

अविनाश ने कहा, "अच्छा होगा यदि कालेज के गेट पर खड़ी मिलो। हम लोग जाते समय तुम्हें ले लेंगे।"

"नहीं।" नीला ने फिर कहा, "मुझे सिनेमा अच्छा नहीं लगता है।"

अविनाश ने साथ ही साथ हामी भरी, "वह तो नहीं ही लगेगा। लगेगा ही नहीं। बंगला सिनेमा भी कोई सिनेमा है। तुम क्या अंग्रेजी सिनेमा देखती हो? अच्छा, तब एक दिन अंग्रेजी सिनेमा ही देखा जायेगा।" हंस कर बड़े गर्व से कहा, "मुझे अंग्रेजी सिनेमा का पास भी मिलता है। सब सिनेमा में ही तो मेरे कारोबार के क्लाइंट हैं ना। तब एक दिन पास लेकर आऊं, क्यों।"

"आयेंगे। तब देखा जायेगा।" नीला निर्विकार भाव से बोली। उसके बाद

चली आयी वहां से ।

अमिता बोल उठी, "तब आज शाम को चाचाजी ?"

अविनाश घड़ी देखते हुए बोले । बड़ी देर हो गयी है । आज आफिस जाने में देर हो गयी । कितनी देर में सब काम-काज निबटाकर निकल पाऊंगा क्या पता । जम्हाई लेते हुए थकी आवाज में अविनाश ने कहा, "देखो, हो सका तो आऊंगा ।"

उस तरफ देवव्रत ने नीला के पास जाकर गर्जन-तर्जन शुरू किया ।

"तुझे जरा-सा भी लिहाज नहीं है नीली ।"

नीला खाने बैठी थी । कौर हाथ में रखे हुए बोली, "क्यों भैया । क्या किया मैंने ।"

"क्या नहीं किया बोल तो ? चाचाजी हम लोगों की भलाई के लिए इतना कर रहे हैं । एक बात में एक रेडियो ले आये, और उन्हीं का तू बार-बार अपमान कर रही है ? गाना सुनाने में 'नहीं,' सिनेमा जाने में 'नहीं'—"

पानी पीकर गले के कौर को नीचे उतारती नीला हंसी ।

"वही तो भैया, बड़ा अन्याय हो गया है । इस बार तुम्हारे चाचाजी के आने पर पहले सिर पर आंचल रखकर उनसे माफी मांग लूंगी । उसके बाद उनका हाथ पकड़कर झट-पट सिनेमा-थियेटर देखने निकल जाऊंगी । क्यों, हुआ तो ?"

देवव्रत की आंखों से यदि आग निकल सकती तो नीला भस्म हो जाती । बड़ी देर तक स्थिर भाव से अपलक ताकते हुए देवव्रत ने कहा—"तुझे हर चीज में मजाक सूझता है । देख, अब इस घर में चाचाजी आयें तो ।"

"आयेंगे भैया आयेंगे," नीला ने कहा, "यदि नाराज भी हों तो अपना रेडियो लेने तो वापस आयेंगे ही । अब जाओ तो तुम, लड़कियों के खाने के वक्त सामने नहीं खड़ा रहना चाहिए ।"

पता चला कि नीला की बात ही ठीक है ।

ठीक दो दिन बीतते न बीतते ही एक दिन सुबह कई राज मिस्त्री, चूना, बांस आदि लिए हाजिर । क्या बात है । तो ऊपर के दो कमरों में चूना पुताई होगी । किसने भेजी है । तो अविनाश बाबू ।

देवव्रत ने हंसते-हंसते नीला से कहा—"देखा-देखा, चाचाजी का सारा गुस्सा इसी बीच पानी हो गया ।"

नीला मुंह बनाकर हंसी, "बोलो कि सब गुस्सा चूना हो गया ।"

देवव्रत ने समझा कि ये नीला का गुस्सा नहीं मजाक है। वह भी हंस पड़ा। "चाचाजी बड़े मिलनसार आदमी हैं। देखना तू।"

अविनाश लेकिन उसके सातेक दिन बाद तक नहीं आये।

अंततः देवव्रत एक दिन दुपहर में खाने-पीने के बाद पत्नी को लेकर निकला। जानना जरूरी है कि चाचाजी क्यों नहीं आ रहे हैं, जानना जरूरी है कि अभी भी उनके मन में अभिमान का कांटा गड़ा हुआ है या नहीं। और सबसे जरूरी है बिजनेस संबंधी मामलों को समझना।

कालेज की छुट्टी थी, नीला ने सोचा दोपहर लेटे-लेटे काटूंगी। अचानक अविना ा को देखकर अवाक हो गयी।

आज की वेशभूषा थोड़ी अद्‌भुत है अविनाश की। एक गर्म कपड़े का पूरी बांह का कोट पहने हैं, पैर में मोजा, गले में गुलबंद। आंख फूली-फूली कुछ लाल। आकर अविनाश केवल खांस रहे हैं, बोल नहीं रहे हैं, रूमाल निकालकर नाक साफ कर रहे हैं।

कहे, "अमिता कहां है, देवू कहां है।"

"वाह रे, आप जानते नहीं हैं ? वे लोग नौ-दस बजे के करीब आपके ही वहां गये हैं जो।"

रूमाल नाक पर लाकर अविनाश छींकने ही वाले थे, लेकिन उनकी छींक रुक गयी।

"क्या कहती हो। मेरे वहां ?"

"आपसे मुलाकात नहीं हुई ?"

"नहीं तो। मैं आज बहुत जल्दी घर से निकल पड़ा हूं। थोड़ा जरूरी काम था इसलिए। लेकिन ये तो बड़ी मुश्किल हुई नीला, मैं उन दोनों के लिए दो पास लाया था।"

"कुल दो पास ?" परिहास से खिल उठा नीला का चेहरा, "केवल दो क्यों ?"

"तुम तो चलती नहीं।"

गला सर्दी से भारी, अविनाश की बातें गर्व भरी सुनाई दीं।

नीला झट से मन में कुछ सोचकर बोली, "कौन-सी फिल्म जरा सुनूं ?"

अविनाश ने किसी साहबी मुहल्ले का नाम लिया, दो सप्ताह से वहां एक मशहूर सिनेमा चल रहा है।

अविनाश ने कहा, "उस दिन तो वे दोनों जाना ही चाह रहे थे। फिर भी जाना नहीं हुआ। आज उसी लिए लेकर आया कुल दो पास। जाने दो, क्या और होगा। खराब जायेगा, यही तो ?"

नीला ने कहा, "खराब क्यों जायेगा। चलिये हम लोग चलें।"

आधा कान गुलबंद से ढका हुआ था, अविनाश को संदेह हुआ कि उसने गलत सुना है। "क्या कहा, तुम चलोगी ?"

"जरूर चलूंगी," नीला हंसी, "आप ऐसी अवस्था में कष्ट उठाकर आये हैं, दोनों पास को जाया करना क्या अच्छा होगा ?"

अवस्था की बात पर अविनाश ने अपनी वेशभूषा की ओर देखा। सच में आज की तरह अस्तव्यस्त उनको कभी नहीं देखा गया। उम्र का यही दोष है, वैसे तो किसी प्रकार चल भी जाता है, लेकिन बारिश और ठंड तो एकदम जकड़ लेती है। नहीं तो आज भी यत्नपूर्वक कलफ लगाये हैं, मूंछ का अगला भाग बड़ी सूक्ष्मता से तराशा गया है, लेकिन तब भी ठीक नहीं लग रहा है। लग रहा है कि कनपटी के ऊपर जो सफेद बाल थे, वह असावधानी में छूट गये हैं, नासापुटों के भीतर जो अधपके केश थे बीच-बीच में झांकते हैं, वे भी।

घड़ी की ओर देखकर कहा, "चलोगी ? चलो तब। और अधिक समय नहीं है। मैटिनी है।"

"अभी बहुत समय है।" नीला सहज भाव से बोली, "रुकिये आपके लिए एक कप चाय बना दूं।"

अदरक डालकर अच्छी तरह एक प्याला चाय बनाकर अविनाश को दी। अविनाश मूंछों को न भिगाते हुए होंठों के ऊपर से पीने की कोशिश करने लगे, नीला इसी बीच तैयार होकर आयी।

मां सो रही थीं, उठाकर कहा, "मैं बाहर जा रही हूं मां।" निमाननी आंखें मलती हुई बोलीं, "कहां, कालेज ?"

"नहीं, ऐसे ही जरा सा। सिनेमा।"

किसके साथ, कहां, खुलकर कहा नहीं। अविनाश से आकर कहा, "चलिए।"

अविनाश ने कहा, "ये क्या, तुम ऐसे कपड़ों में जाओगी ? एक गर्म स्कार्फ तक नहीं। ठंड नहीं लगेगी ?"

धीमे स्वर में नीला हंसी। "स्कार्फ मिलेगा कहां से, जो लूंगी। जरा-जरा-सी

बात में मुझे ठंढ नहीं लगती है, चलिए ।"

महीन साड़ी ही अच्छे ढंग से पहन कर एक लड़की गर्व से पैर बढ़ाकर चल रही है, उसके साथ-साथ चलते अविनाश खुद को 'निश्चेष्ट स्थविर' से लगे। बाहर और भी ठंडी हवा, बदन को और भी अच्छी तरह से ढांक लिया अविनाश ने। गली खत्म होते ही जल्दी-जल्दी मोटर में घुस कर जान बची।

कालेज की लड़कियों से बड़ी प्रसंशा सुनकर सोचा था कि खूब सीरियस प्रकार की उद्देश्यपूर्ण फिल्म होगी। आकर देखा, वैसी नहीं थी। एकदम हल्की फिल्म, आकर्षण मुख्यत: चमकीली दृश्यावली और कुछेक प्रौढ़ अच्छी स्वस्थ लड़कियों का अंग सौष्ठव का था। प्रत्येक फुट जोड़कर उत्तेजना सस्ती किंतु तीव्र। ऊपरी तौर पर है आकाश में विमान युद्ध, जमीन की रेल दुर्घटना, पानी में कई एक तरुणियों की लीलामयी बाहु-भंगिमा।

अंधेरा प्रेक्षागृह बीच-बीच में दर्शकों की उत्साहित हंसी से कांप उठता है। सबों के हंसने पर अविनाश भी हंस रहे हैं, रह-रहकर उत्तेजना में ताली भी बजा रहे हैं।

लेकिन अंत के एक दृश्य में थोड़ी बरजोरी कर बैठे। सुंदरी अभिनेत्री क्लारा डेविस समुद्र में स्नान कर भीगे खुले केशों में किनारे आयी। संगमरमरी देह, रक्तिम नखाग्र पर सूर्य की किरणें बिखर रही हैं, थोड़ी-थोड़ी जल की बूंदें अभी भी लगी हैं पलकों पर, मांसल बाहुमूल, खूबसूरत गर्दन। छोटा-सा आवरण भी उतारने का प्रयास करने जा रही है।

फिल्म में केवल इशारा भर था। अविनाश का उस समय पागल होना भर बाकी था। अचानक बगल की सीट का हत्था मुट्ठी में जोर से दबाकर नीला के कान के पास मुंह लाकर फुसफुसाकर कहा, "कैसा लग रहा है ?"

नीला के उस तरफ एक अंग्रेज लड़का, सरक कर बैठने का उपाय नहीं। फिर भी जितना हो सका अपने को समेट लिया।

इसके बाद जितनी देर तक फिल्म चली, अविनाश सामने की ओर देखते हुए सभी के साथ तारीफ करते रहे। गाने के वक्त हत्थे के ऊपर ताल दिये, नाच के वक्त पंप-शू से ही सिमेंट की जमीन पर पैर बजाये।

उस दिन नीला ने मन ही मन अपने साथ एक समझौता कर लिया। इस नखदंत-विहीन-गतयौवन-धनी के साथ खराब व्यवहार करने से क्या। कोई

नुकसान तो करेगा नहीं, दो एक गाना सुनेगा, साथ सिनेमा आ जाने पर धन्य हो जायेगा। तबीयत खराब के बहाने से कभी कदा आकर अदरक डली हुई चाय पीना चाहेगा। इससे ज्यादा क्या।

घर लौटते समय अविनाश बोले, "तुम अंग्रेजी गाना नहीं जानतीं ?" मानो अभी तक उसके दिमाग पर प्रेक्षागृह की सुगंध भरपूर है।

"बंगला ही अच्छी तरह नहीं जानती।" नीला ने कहा। "सीख कहां पायी।"

"गाने के स्कूल में भर्ती होने से ही सीख सकती हो।"

"गाने के स्कूल? मेरी कालेज की फीस दो महीने की बाकी पड़ी है, जानते हैं ?"

"बाकी पड़ी है ? अवाक होकर अविनाश पॉकेट टटोलने लगे। जैसे इसी वक्त नीला की दो महीने की फीस दे देंगे। इसके बाद अचानक तेज आवाज में बोल उठे, "तुम गाने के स्कूल में भर्ती हो जाओ। और किसी भी बात के लिए तुमको चिंता नहीं करनी होगा।"

"सच कह रहे हैं ?" नीला की आंखों के तारे चमक उठे।

"तुम्हारे पास आवाज है, सुरज्ञान है। केवल गाने की साइंस ही तो। तुम दो दिन में सीख जाओगी। इसके बाद रेडियो, रेकार्ड तुम कुछ मत सोचो, मैं हूं, सब ठीक कर दूंगा।"

पहले होता तो नीला बिगड़ पड़ती, सुना देती दो-चार खरी-खोटी। लेकिन उसका दिमाग ठीक है। जैसे मनोरंजन का कोई सामान पा गयी हो। बोली, "तो इसी महीने से भर्ती हो जाऊं क्या विचार है ?"

अब फंसे चक्कर में कोलतार की सड़क की ओर देखकर नीला मन ही मन हंसी। देखा ही जाय। सोचा, पूछे कि अमिता के जैसी दुखी भानजी और कितनी हैं अविनाश की। उनकी कालेज में पढ़ने वाली ननद है कि नहीं, नीला जैसी।

ऊपर न जाकर उस दिन नीला पहले गयी शांति के घर।

शांति और इंद्रजीत बाघबंदी खेल रहे थे। शांति ने कहा, "आओ भाई। कहां गयी थीं ?

"सिनेमा।" तख्त के एक किनारे धप्प से बैठकर पंखे से हवा करती हुई नीला ने उत्तर दिया।

इंद्रजीत ने कहा, "आपको लौटते समय मैंने देखा था। मोटर में आ रही थीं न ? साथ में एक बूढ़े जैसे सज्जन थे।"

"कौन भाई ?" शांति ने खबर ली ।

नीला ने कहा, "भाभी के चाचा ।"

"मुझे तो बड़े विचित्र से लग रहे थे वे सज्जन ।" इंद्रजीत ने कहा, "बेचारे ठंड के डर से एकदम दबे-ढंके, बस चलता तो जैसे रजाई-कंबल लेकर निकलते। उसके बगल में आप बिलकुल स्वच्छंद, उद्धत, निःशंक ।"

शांति ने कहा, "फिर कौन-सी फिल्म देखी भाई, बोलो न कहानी भी सुना दो ।"

दो-चार बातें सुनते न सुनते ही शांति उठ खड़ी हुई। "हम लोग भी सिनेमा देखने जायेंगे ।"

"खेल तो खत्म होने दो ।" इंद्रजीत ने विरोध किया ।

एक झोंक में सारी गोटियों को मिला कर शांति ने कहा, "अब नहीं खेलूंगी। आप तो हार गये हैं। मुझे तो बंदी नहीं बना सके ।"

"लगता है इंद्रजीत बाबू बकरा बने थे ?"

"और क्या बनेगा वह ।" शांति हंसते-हंसते बोली ।

"और आप बाघ ?"

"बाघ नहीं, बाघिनी बोलो । चलिये कविवर ।"

"अब समय कहां है सिनेमा जाने का ?" इंद्रजीत ने कहा—"सात तो बज गया है ।"

"क्यों, रात का शो नहीं है ?"

"मुनिदा अभी घर नहीं लौटे हैं—"

"इसी बीच आ जायेंगे। न आयें तो भी उनके पास एक चाबी है, ताला खोलकर भीतर आ सकेंगे। एक चिट्ठी न होगा तो लिख जाऊंगी। आप उठिये तो। मैंने बहुत उज्र आपत्ति सुन ली है। नहीं तो अभी जाकर टिकट ले आइए। इसके बाद जाइयेगा तो मिलेगी नहीं ।"

शांति की आंखों की ओर देखकर इंद्रजीत का दुबारा आपत्ति करने का साहस नहीं हुआ। किसी प्रकार जल्दी-जल्दी दोनों सैंडिल पैरों में डालकर निकल पड़ा।

ऊपर आते ही नीला ने देखा, भाभी आ गयी है ।

"कहां गयी थी भाई ?"

इस बात का उत्तर न देकर नीला ने कहा, "तुम लोग कहां गये थे, वही बताओ ।"

"सिनेमा ।"

"सिनेमा !" तुरंत नीला दुहरा उठी ।

"चाचाजी ने पास जो दिया था। वही 'सिदूर संध्या' फिल्म का। कितनी बढ़िया है ननदजी कि क्या बताऊं। मैं तो पूरे समय रोती रही और तुम्हारे भैया बगल में बैठकर मुझे डांटते रहे ।"

नीला का दिमाग दुष्टता पर उतर आया। पूछा, "तुम्हारे चाचाजी नहीं गये ?"

"कहां जाने पाये। जायेंगे यह निश्चय कर लिया, इसी समय आफिस से एक जरूरी फोन आ गया। गाड़ी लेकर भागना पड़ा हुगली।"

"हुगली। उसी वक्त हुगली चले गये ?" हंसी दबाना नीला को मुश्किल हो रहा था।

"उसी वक्त। खाकर आराम तक नहीं कर पाये। एक अच्छी बात हुई ननदजी अगले महीने से तुम्हारे भैया तो चाचाजी के वहां काम करने लगेंगे। आज बात-चीत करीब-करीब ठीक हो गयी है। तुम्हारे भैया कल ही यहां के आफिस में नोटिस दे देंगे। अच्छा हुआ कि नहीं ?"

"खूब अच्छा।"

नीला थोड़ी और उत्साहित हो जायेगी इसकी आशा की थी अमिता ने। थोड़े खिन्न मन से ही जैसे जोर देकर बोली, "अच्छा ही तो हुआ। वैसे ही कोई किसी को ऐसा सुअवसर देता है क्या। इतने भोले भाले हैं, इसीलिए। नहीं तो हम लोग तो सोच रहे थे कि जाने क्या वे अपने मन में सोचे बैठे हैं। कुछ भी नहीं। स्लेट जैसे धुल-पुंछ गयी हो। मुझ से केवल हंसकर बोले, तेरी ननद बच्ची है अमि, फिर कालेज में पढ़ रही है, थोड़ी तेज मिजाज है उसकी किसी बात का बुरा मानूंगा, मुझ को भी क्या बच्चा समझ रखा है तूने !"

दूसरी ओर तब भी रास्ते-रास्ते भटक रहा है इंद्रजीत। तीनेक बार इस गली का ही चक्कर लगा गया। पार्क में घास नहीं, बेंच पर गंदगी, बैठने का उपाय नहीं। बीच-बीच में पाकेट में हाथ डाल रहा है—खाली पाकेट, दो एक बीड़ी—हाथ लग रही हैं केवल।

ये किस परीक्षा में आज डाल दिया शांति भाभी ने। सिनेमा जाना क्या उसके लिए कोई मुश्किल बात है। लेकिन महीने का अंत, मेस में अंतिम पैसा तक

हिसाब से काट लिया है, पाकेट में कुछ भी नहीं कालेज की फीस बकाया कर ड्राईक्लीनिंग से कपड़ा धुलवाना पड़ रहा है। कम से कम भद्र आदमी की तरह बाहर निकलना होगा तो।

साढ़े सात बज गये। और इंतजार नहीं किया जा सकता। इसके बाद किनू ग्वाले की गली का छबाई एफ मकान के एक तल्ले का दरवाजा सदा के लिए बंद हो जायेगा इंद्रजीत के लिए।

शांति भाभी को यदि सब बातें विस्तार से बता दी जायें तो कैसा हो। अंत में सहमे-सहमे कदमों से इंद्रजीत फिर से गली में घुसा। जिमनास्टिक का अखाड़ा, उसके बाद ही एक गैस बत्ती के बगल दुकान। इंद्रजीत ने साइनबोर्ड पढ़ा; 'पेरिस ज्वेलरी'। टिमटिमाती रोशनी में एक आदमी दत्तचित होकर काम कर रहा है। किसी प्रकार इंद्रजीत ने दुकान की सीढ़ी पर पैर रखा।

"आइए आइए।" उठकर खड़ा हो गया प्रमथ पोद्दार। "क्या चाहिए ?"

झट से छाती के पास वाली पाकेट से इंद्रजीत ने कलम निकाल कर पोद्दार के सामने रख दिया। बड़ी मुश्किल से संकोच को परे धकेलते हुए एक सांस में बोल उठा, "इसको गिरवी रखकर कुछ रुपया दे सकते हैं ?"

"देखें," कलम हाथ में लेकर रोशनी के सामने जाकर जांचने लगा प्रमथ। दिखायी नहीं पड़ा कि हंस रहा है या नहीं। उसके बाद गंभीर स्वर में कहा, "हूं। कीमती कलम मालूम पड़ती है।"

"देगें न तब रुपया ?" अधीर आशा में इंद्रजीत का गला कांप उठा, "ज्यादा नहीं ये ही कुछ "

"नहीं।" कलम इंद्रजीत के हाथ में वापस देकर प्रमथ ने कहा, ना। "ये सोना चांदी की दुकान है साहब, कलम-वलम हम लोग गिरवी नहीं रखते हैं।"

एक फूंक में जैसे बुझ गया हो इंद्रजीत। थोड़ा सीधे सरक कर दरवाजे की चौखट पर हाथ रखा।

"कलम गिरवी नहीं रखते ?"

"नहीं साहब। इन सबका बाजार अलग है। हम लोगों का काम केवल सोना से है चांदी से है।"

इंद्रजीत ने क्षणभर कुछ सोचा। इसके बाद एक बारगी अनामिका से अंगूठी निकालकर प्रमथ के हाथ में रख दी। "तब इसे ही लीजिए। गिरवी-फिरवी नहीं,

खरीद ही लीजिए आप।"

दुबारा रोशनी के नीचे बैठा प्रमथ। धीरे अलस्य भाव से कसौटी पर ढेर सारे दाग लगाकर बोला, "हूं। असली ही मालूम पड़ती है। तो इसको बेचेंगे ?"

उस ओर अधीरता से जमीन पर पैर घिसने लगा था इंद्रजीत,—"बेचूंगा। कितना होगा जल्दी से बोल दीजिए।"

"ठहरिये साहब। ये सब काम क्या इतनी जल्द-बाजी में होता है।" छोटा-छोटा बटखरा निकाला प्रमथ ने। चांदी की चवन्नी, अधेली दुअन्नी, रत्ती। अंगूठी रखता है पीतल के पल्ले पर, फिर उठाता है, दुनिया-भर का हिसाब करता है, मन ही मन कुछ बड़बड़ाकर बोला, "चार आना दो रत्ती सोना। आज सोना का दाम हुआ है · मेरे हिसाब से तब हुआ है···"

वह कठिन हिसाब-किताब इंद्रजीत के दिमाग में घुसने से रहा। रुपया हाथ में मिले तो भाग कर जान बचे। बोला, "दीजिए तब। अंगूठी का पेटर्न बड़ा पुराना हो गया है। इसीलिए बेचे दे रहा हूं।"

इंद्रजीत के जाने के बाद दरवाजा लगाकर फिर से रोशनी के सामने बैठा प्रमथ। अंगूठी को घुमाया-फिराया कई बार। हंसा मन ही मन। इंद्रजीत को उसने पहचान लिया था। यही लड़का तो छबाई एक मकान में आवाजाही करता है न ? उस दिन उस घर की बहू को लेकर भीगते-भीगते बड़ी रात में घर लौटा था, यही तो ? बहुत देखा है प्रमथ ने, बहुत देखेगा।

पैटर्न पुराना हो गया है। इसीलिए बेच रहा है। प्रमथ ने बक्से में अंगूठी रखते-रखते सोचा, ऐसी बहुत खाली पाकेट वालों की बहाने बाजी खूब सुनी है उसने। मर जाने पर भी बोलेगा नहीं, रुपये की जरूरत है, इसीलिए आया हूं।

पैटर्न पुराना हो गया है। अरे, किसकी आंखों में धूल झोंक रहा है तू। पुराना हो गया है तो नया बनवा ले। और थोड़ा-सा सोना दे, बढ़िया चीज होगी। बेचने के लिए क्यों आया।

7

एक-एक करके लोग बढ़ रहे हैं किनू ग्वाले की गली में। बूंद-बूंद जमा होता है शहद जैसे।

एक के बाद एक दीपक बुझा था, बैसाक बाबू लोग जब खुद चले गये थे, लेकिन उसे भाड़े पर नहीं उठाया गया। इतने दिनों में लगता है व्यापार बुद्धि आयी है, एक-एक करके भड़ैती ला रहे हैं। कहीं पार्टीशन लगाकर, नहीं तो टाट का पर्दा लगाकर।

घर-घर में फिर प्रकाश जगमगा उठा।

छ बाई एफ मकान में ही, पहले नीला और संबंधी आये, उसके बाद शांति और मनींद्र। लभाव में इंद्रजीत आता जाता था।

ठीक उल्टी ओर एक मकान है, रूप रंग में इसी मकान का ही दूसरा रूप। उसी मकान में कुछ दिन हुए आयी है शकुंतला।

हर रोज नीला जब थक कर कालेज से लौटती है, शकुंतला तब खिड़की पर खड़ी होकर उसको देखती है। नीला को पता भी नहीं चलता। केवल पांच बजे हैं, इसी बीच कुकर में खाना बन गया शकुंतला का, कंघी-चोटी करके वह तैयार होना। छाती पर से तिरछे-तिरछे आंचल खींच कर खोंस लिया है कमर में। सिर में लगा लिया है सफेद रूमाल का शिरस्त्राण। सेविका का रूप। नयी बहुओं के घूंघट जैसा।

अस्पताल में नाइट ड्यूटी है शकुंतला की। लंबी-लंबी दो आंखें। लगातार रात को ड्यूटी देने से दोनों आंखें बीच-बीच में तंद्रिल हो जाती हैं केवल, थकती नहीं। ट्रे में सजी हुई दवाओं को देना, घंटे-घंटे में टेंप्रेचर लेना, हंसमुख चेहरे से अच्छा-बुरा पूछना, जैसी जब जरूरत हो, सच्चा-झूठा कहकर तसल्ली देना, ऐसा काम, एक अद्भुत निद्राविहीन 'कोहबर-रात' के बाद रात, एक ही सेज पर एक ही व्यक्ति के साथ नहीं, सैकड़ों सेजों की सेविका।

सुबह, रास्ते की बत्तियों के गुल होते ही लौटती है जब, तब फिर अकेली। सुबह की ठंडी हवा में दोनों पलकें भारी हो गयीं हैं, बेडकवर तक बिछाने का धैर्य नहीं रहता, आते ही सो जाती। इस बिस्तर में कोई शरीक नहीं है।

दसेक मिनट तक उलटने-पलटने के बाद नींद आती है। दो घंटे होते ही बदन

एकदम ताजा। एक कप चाय पीकर नहाने चली जाती हैं। लौटकर देखती है कि थोड़ी धूप कमरे में पड़ रही है। ऐसे कमरे में भी धूप आती है। कटी पतंग की तरह दिशाहारा धूप कभी-कभार उस मकान की छत पर, इस मकान की दीवार से छिटक कर कमरे में पड़ती है। उस समय बदन लगता है स्निग्ध, ताजी, धुली जमीन की तरह जगमगाता हुआ केंचुलि उतार कर मानो चली आयी हो नागिन।

उसी धूप में सिर धोकर बैठती है शकुंतला, चिक तान कर सामने वाले मकान की लड़की को देखती है। लगता है उसका भी नहाना-धोना हो गया। अब कालेज जायेगी लड़की। चोटी बांध रही है, अच्छा स्टाइल है। कितने केश हैं। दूर से पता नहीं चलता कि कितना असली है और कितना रिबन की चोरी है। मिलावट का दूध जितना सफेद होता है, रिबन में बंधी हुई चोटी भी दूर से उतनी ही काली लगती है।

दोपहर के खाने के बाद एक और नींद। परिपूर्ण, एकांत, निश्चित। कोई नहीं जो नींद में खलल डालेगा, बच्चा नहीं जो ऊधम मचायेगा। दिन में सो-सोकर जैसे शरीर भारी हो गया हो। दायें हाथ से बायें हाथ की कलाई पकड़ती है शकुंतला। अभी भी पूरी कलाई हाथ में आ जाती है। और कितने दिन बाद नहीं आ सकेगी। ये दुर्बल स्वास्थ्य नहीं है, अक्षत यौवन अभी ब्याज दे रहा है लड़की को। प्रौढ़ सुखी पुरुष की तोंद की तरह।

संध्या समय आयेगी, गीता ललिता, मीना, अनिमा, स्टेला। आते ही हल्ला-गुल्ला शुरू कर देंगी। स्टोव जलायेंगी, गाना गायेंगी। एक ही साथ काम करती हैं, लेकिन उम्र अभी कम है उनकी। लेकिन बहुत ही दुर्बल। कम तनख्वाह, जरूरत से ज्यादा मेहनत। उनके शरीर का सौंदर्य देखने-भर को है, कोई ताजगी नहीं। कसके ओढ़ा गया आंचल छाती के पास थोड़ा सा फूल भर गया है केवल।

अस्पताल के कर्ताधर्ता को बोलने से कोई लाभ नहीं। डाक्टर उपाध्याय जिन्होंने सारे यूरोप अमेरिका के घूमने के बाद नाम के अंत में उपाधियों के प्रथम अक्षर के असंख्य टुकड़ों को बटोरा है, विजिट के नाम पर गिनती में तीन, उनको कुछ कहने जाने से पहले तैयार रहना होगा मानवता से संबंधित लंबा एक घंटा व्यापी भाषण सुनने के लिए। नर्स होती हैं कल्याणी। प्रोफेशनल नहीं, मिशनरी। एक जाति की वे रक्षा कर रही हैं, स्वस्थ बना रही हैं। धात्री—धात्री शब्द की धातु मालूम है ? नहीं जानतीं ? तुरंत नाराज हो जायेंगे डाक्टर उपाध्याय, यही तो

तुम लोगों में दोष है—तुम लोगों में ही क्यों—शिक्षा की असंपूर्णता। थोड़े से यूनानी रोग, अमेरिकन दवा और टेंप्रेचर देखना ही सीखती हैं नर्स।

जितनी देर तक धात्री जीवन की तत्व कथा सुनाते रहते हैं डॉ. उपाध्याय उतनी देर तक आंखें पूरी तरह नहीं खोलते हैं, अधखुली रखते हैं। धीरे-धीरे बात करते हैं, मुंह तक पूरा नहीं खुलता। लेकिन जैसे ही नाराज हुए वैसे ही मुंह पूरा खुल जायेगा, जीभ बाहर निकल आयेगी लकलकाती हुई। मोटी जीभ पान के रस से भीगी हुई।

गीता कहती है, "कब यहां 'सेविका सदन' खुलेगा शकुंतला दी, बोलो ना।"

शकुंतला ने कहा, "खुलेगा रे खुलेगा, चिंतित मत हो।" बांहों को फीते से नापते-नापते बोली, "और थोड़ी मोटी नहीं होने से क्या अध्यक्ष पद के लायक लगूंगी।"

ललिता बोली, "शकुंतलादी नर्सेस होम खोलेंगी कि चूल्हे की छाई। चोरी से गृहस्थिन बनेंगी इसीलिए तो यहां आकर अलग से रहने लगीं।"

नाराज होने का भाव दिखाती हुई शकुंतला बोली, "अपना सपना दूसरे को मत दिखा। लगता है तू उसी ताल में है। तेरे उस मेडिकल स्टूडेंट की क्या खबर है ?"

इन लोगों को लेकर एक 'नर्सेस होम' खोलेगी शकुंतला। छोटा-मोटा एक एस्टेब्लिशमेंट। नाम भी ठीक हो गया है—'सेवासत्र।' महीने के अंत में कोई तनखवाह नहीं स्वतंत्र जीविका। प्लान सब ठीक हो गया है। बस थोड़ा सा रुपया और चाहिए। इसके बाद एक-एक करके ये लोग भी थोड़ी सहायता करेंगी। ललिता, गीता, अणिमा और स्टेला भी।

केवल एक ही बात है। इतनी छोटी गली, यहां कैसे नर्सेस होम चल सकेगा। किसको पता चल सकेगा कि यहां आधा दर्जन लड़कियां रोगी-प्रसूतियों की सेवा के लिए सब समय तैयार हैं। जितना भी रुपया दें, वे लोग राजी हैं।

समस्या है तो समाधान भी है। गली के मुहाने पर एक साइनबोर्ड रहेगा, उस साइनबोर्ड पर पता ठिकाना लिखा रहेगा, छपा रहेगा एक हाथ। उसी हाथ की एक उंगली का निर्देश रहेगा 'सेवासत्र' का रास्ता।

लड़कियों के चले जाने के बाद फिर से सजना-गुजना। फिर अस्पताल। और एक कर्त्तव्य से भरी रात। और भी एक रात।

शीशे के सामने केश संवारते हुए शकुंतला के होंठों से हंसी फूट पड़ी । बिलकुल सादी, सीधी मांग । इस मांग की ओर देखकर और कौन कहेगा कि इसके ऊपर से सिंदूर की एक गाढ़ी रेखा चली गयी थी । आज के नीरस वर्तमान के पीछे था रंगीन एक अतीत । वह रंग चाहे जितना भी फीका क्यों न हो, जितना भी अस्थायी क्यों न हो ।

एक ही मोहल्ले में मकान, बिलकुल आमने-सामने दोनों खिड़कियां । परिचय होने में देर नहीं लगी । इसके बाद नीला एक दिन संध्या समय मिलने भी आयी ।

घूम-घूम कर सारा घर देखा । बोली, "वाह, कितनी अच्छी तरह से सजाकर रखा है ।"

सुनी सेवासदन की परिकल्पना । बोली, "आप लोगों को देखकर ईर्ष्या होती है । कैसे अपना बोझा खुद ही ढो रही हैं । हम लोग तो पिता के गले के बोझ हैं ।"

शकुंतला बोली, "दूसरे की थाली में घी ज्यादा ही दिखायी देता है । आप तो कालेज में पढ़ती हैं ।"

"कुछ करने को नहीं है, इसीलिए पढ़ रही हूं ।" नीला बोली, "नहीं तो कब का छोड़छाड़ दिया होता ।"

शकुंतला के कमरे की खिड़की से शांति का कमरा दिखायी देता है । मतलब कम रोशनी में जितना दिखायी पड़ सके ।

शकुंतला ने पूछा, "नीचे तल्ले की बहू और आप लोग लगता अलग-अलग भड़ैती हैं ?"

"हां," नीला बोली, "वे लोग बाद में आये हैं । बड़ी मजेदार हैं शांति दी, हैं न ?"

शकुंतला ने सीधे-सीधे जवाब नहीं दिया । "क्या पता कैसी है । परिचय तो हुआ नहीं । फिर भी बड़ी मिलनसार लगती है । बड़ी रात तक उनके घर में बैठकबाजी होती रहती है । मैं तो किसी-किसी दिन-रात बीतने पर ड्यूटी से लौटती हूं । उस समय भी उस मकान में ताश खेला जा रहा है, देखती हूं ।"

"हां," नीला बोली, "बीच-बीच में वे लोग खेलते हैं । मनीदा को ताश का खूब नशा है न, इसीलिए दोस्त यारों को बुला लाते हैं ।"

"मनिदा कौन ? उस बहू के पति की बात कह रही हैं ?" शकुंतला बोली, "वे तो पार्टिशन के इस तरफ पड़े-पड़े सोते रहते हैं । उनको तो कभी खेलते देखा

नहीं। खेलती तो है आपकी शांति दी।"

शांति दी ताश खेलती है रात तीन-चार बजे तक ? पति के दोस्तों के साथ, बाजी रखकर ? नीला को जैसे विश्वास नहीं हुआ। "आपने गलत देखा है।"

"ठीक देखा है," शकुंतला बोली, "इतना गलत देखने पर क्या हम लोगों की नौकरी भी रह पाती, थर्मामीटर का प्वाइंट, डिग्री मिलाकर हम लोगों को रोगी का टेंप्रेचर देखना होता है।"

"लेकिन-लेकिन," नीला थोड़ा इधर-उधर करती हुई सी बोली, "वे लोग तो बाजी लगाकर खेलते हैं।"

"तो आपकी शांतिदी ने भी बाजी लगाकर ही खेल लिया। उस समय की द्रौपदी को बाजी में लगाया गया था, आज की द्रौपदी खुद ही जुआ खेलने बैठ गयी। अंतर कितना है बोलिये तो।"

अंतर बहुत है। नैतिकता, रुचि, शिक्षा के जिस सांचे में नीला की मानसिकता तैयार हुई है, उसमें गयी रात तक पति के दोस्तों के साथ जुआ खेलने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। थोड़ा बहुत मिलना-जुलना, थोड़ी बहुत हंसी-मजाक समझ में आता है, शिष्टता फिर भी रहती है। शिष्टता रखने के लिए। लेकिन ये किस शांति दी की बात सुनकर आयी है आज। इतनी मधुर शांति दी, इतनी शांत। उनका ऐसा रूप। दोनों तस्वीर किसी भी प्रकार एक नहीं की जा सकती।

ऐसा खुटका बैठ गया मन में कि कितने दिन तक शांति से अच्छी तरह बात नहीं कर सकी, सीधे-सीधे आंखें भी नहीं मिला सकी। शांति की एक शर्मनाक बात नीला जान गयी है, वह भी मानो एक शर्म सी हो।

अंत में निश्चय किया, इस शर्म का बोझ उतार फेंकेगी। शांति से पूछेगी सब सीधे-सीधे।

प्रश्न सुनकर शांति कुछ क्षण तक चुप रही। इसके बाद धीरे-धीरे बोली, "तुम्हें सब कुछ बताऊंगी भाई, सब विस्तार से ही बताऊंगी। आज केवल इतना जान रखो कि आदमी बदल जाता है। नहीं तो विश्वास कर सकोगी, मेरा जब ब्याह हुआ था, तब मेरी नाक में बुलाक थी। पंद्रह वर्ष उम्र, पति को तुम कहकर बुलाने में ही लग गये थे छह महीना। मुंह से बात नहीं निकलती थी, बहुत दिनों तक उनको दिन के समय जो देखा वह भी घूंघट के पीछे से। गांव की लड़की स्वप्न देखा था, पति नौकरी करेंगे, रुपया लाकर रखेंगे हाथ में, निश्चिंत होकर

गृहस्थी चलाऊंगी, झझंट-झमेले से दूर। पति को जब पहचाना तब देखा कि वह सब नहीं होनेवाला है। ये दूसरी तरह के आदमी हैं। इसको पकड़ते हैं तो उसका छोड़ते हैं। कभी-कभी बिना कुछ पकड़े ही छोड़ देते। समझ लिया कि स्वयं को भी उस जैसा बनाना होगा, नहीं तो मुझे भी कभी छोड़ देगा। बदलना शुरू कर दिया अपने आप को। एक के बाद एक, बुलाक उतरी, घूंघट उठ गया, बोल फूट पड़े। घिसते-घिसते पत्थर मोंथरा ही नहीं होता भाई, नुकीला भी होता है।"

और कुछ पूछा नहीं नीला ने लेकिन मन की धुंध नहीं साफ हुई। नुकीली है शांति भी, इसमें संदेह नहीं लेकिन उस नोक पर बूंद-बूंद कर जहर भी जम रहा हो जैसे। दलदल से निकल नहीं पा रही हैं शांतिदी बल्कि और भी क्रमशः धंसती चली जा रही हैं।

इसके साथ ही शकुंतला और उसके साथ की लड़कियां जैसे कुछ और ही हों। उनके अतीत के बारे में पता नहीं, वर्तमान डूबा हुआ है अंधकार के गढ़हे में, फिर भी उन लोगों ने हाथ आगे की ओर कर दिये हैं। उज्ज्वल, निर्मल, आत्म निर्भर। शकुंतला, गीता, अणिमा, स्टेला। वे लोग भी अपने को बदलना चाहती हैं। लेकिन शांतिदी के रास्ते से नहीं।

अगले महीने के आरंभ से ही 'सेवासत्र' का प्रयास शुरू हो गया। और भी दो कमरों की रंगत बदल दी शकुंतला ने। उसके बीच एक आफिस का कमरा। एक टेबल, दो कुर्सियां, अभी तक तो यहीं। साइन बोर्ड, दो बल्ब और बढ़ गये। शकुंतला के पास अपनी थोड़ी पूंजी थी। उसमें दस-बीस रुपया चंदा दिया और सब लड़कियों ने।

केवल ललिता को छोड़कर। शकुंतला बोली, "क्योंरी ललिता, तू कुछ देगी नहीं ?"

"कुछ भी नहीं है कुंतलादी।"

"तेरे पास अपना कुछ नहीं है, मालूम है। किंतु सुना है तेरा वह मेडिकल स्टूडेंट तो बड़ा पैसे वाला है। उससे कुछ नहीं दिला सकेगी ?"

सकुचाते हुए ललिता ने कहा, "उसका इन सबमें विश्वास जो नहीं है, कुंतला दी।"

"विश्वास नहीं ?" शकुंतला हंस उठी, ऐसी हंसी जो लड़कियों के लिए अशोभनीय हो, "छोड़ देगा क्या वह तुझे, इस डर से ? लगता है उसने तुझसे शादी का

वादा किया है। बोलो ना, किया है ?"

एक लड़की का सवाल, बाकी सबों की कौतुक से भरी आंखें। ललिता पसीना-पसीना होने लगी। उत्तर देने में केवल दोनों होंठ फड़फड़ा कर रह गये। खोल नहीं सकी।

शतरंज खेलने आया हुआ प्रमथ शिवव्रत बाबू से बोला, "अब क्या, किनू ग्वाले की गली तो नवद्वीप हो गयी साहब।"

"किस प्रकार ?"

"प्रकार क्या एक है। वे लोग तो अनेक प्रकार से दिखायी देती हैं। नर्त्तकी, देवदासी, सेवादासी। एक सेवादासी ने तो कमरा लिया है। कुसुम बाइजी बीसेक वर्ष पहले जिस कमरे में रहती थीं, वहां पर। और भी कई सेवादासी आ रही हैं, सुना है।"

"सेवादासी ?" विस्मित शिवव्रत बाबू ने आंखें ऊपर उठायीं, "वे लोग सुना है, नर्स हैं।"

"अरे साहब नर्स माने सेविका तो।" आंख मिचमिचाते हुए प्रमथ बोला, "सेविका और सेवादासी एक ही है। रुकिये कुछ दिन और, कितना तमाशा देखेंगे। गली में फिटन गाड़ी लाइन लगाकर खड़ी हो गयी है। कुसुम बाई जी की वारिस तो ये सब हैं। खाली सब्र कीजिये।"

आड़ से सुनकर नीला का सारा शरीर झनझना उठा। कुछ बोल नहीं सकी।

8

उस बार पूजा की छुट्टी के बाद इंद्रजीत घर से लौटने पर सीधा चला आया इस मकान में। किनू ग्वाले की गली की जनसंख्या मे और एक आदमी की वृद्धि हुई। नीचे तल्ले के कोने में एक कमरा साफ करके इंद्रजीत ने अपना अड्डा बनाया। अढ़ाई रुपये का तखत, पैकिंग बक्से में कुछ किताबें, टीन के एक सूट केस में कुछ कपड़ालत्ता। यही संपत्ति। घर का किराया आठ रुपया।

अपने घर जाकर इस बार बहुत दुबला होकर आया है इंद्रजीत, बहुत बीमार पड़ गया था शायद। बोला, "अब मेस की शरण नहीं जाऊंगा।"

नीला को आश्चर्य हुआ एक दिन सुबह शांति को सीढ़ी के कोने की खाली जगह को साफ करते देखकर।"

"क्या बात है शांति दी।"

"रसोई का इंतजाम कर रही हूं, भाई।"

"ये क्या। सुना है तुम लोगों का खाना तो होटल से आता है।"

"आता था। लेकिन अभागा कवि तो फिर से आकर हाजिर हो गया है, देखती नहीं। उसको क्या दूंगी।"

"लगता है। इंद्रजीत बाबू भी तुम लोगों के साथ ही खायेंगे ?"

"अरी भैया, खायेंगे नहीं। चार घरों का खाना खायेंगे, इसीलिए तो मेस छोड़कर यहां रहने चले आये।"

दांत से होंठ काट लिया नीला ने। मर झुकाकर शांति चूल्हे में फूंक मार रही थी इसलिए देख नहीं पायी। नीला बोली, "लेकिन तुम्हें तो रसोई बनाना मना है शांति दी, हार्ट की बीमारी है, डाक्टर ने मना किया है ?"

सर उठाकर देखा शांति ने। चूल्हे के धुयें से या मन के आवेग से, आंखें दोनों छलछला उठीं। कहा, "पहले पेट भरे तभी तो लोग हृदय की बात सोचेंगे भाई ? इंद्रजीत प्रत्येक महीने तीस रुपया खर्च के लिए देगा, सब अनिश्चयों के बीच इतना भर ही तो निश्चय है।"

नीला ने सोचा पूछे कि अभाव क्या इतना बढ़ गया है शांति के लिए जो जुआ खेलने से भी पूरा नहीं पड़ता है, इसीलिए जो हारने के लिए हमेशा तैयार है, उस आदमी को ही खींच के लाया गया है।

मनींद्र आजकल ज्यादा नहीं दिखायी देता है। चाय के वक्त नहीं, नहाने के वक्त नहीं, खाने के वक्त नहीं। पूछने पर शांति कहती है, 'लौटे नहीं' या 'बाहर गये हैं।'

कहां घूमते हैं इतना मनिदा। और कहां, थियेटर नाटक लेकर घूमते-घामते रहते हैं।

"नाटक लिख रहे हैं शायद मनिदा ?"

"नया नहीं, पुराने उपन्यासों को ही नाटक बना रहे हैं।"

"उपन्यास को नाटक बना रहे हैं ? क्यों ?"

"समझती नहीं ? नाटक में पैसा जो ज्यादा मिलता है। एक नाटक होते ही…"

हू-हू करके जो रुपया हमेशा आता रहेगा इस बात को अधूरा ही छोड़कर शांति रुक जाती है। कहती है, "चलूं भाई। कवि को नहाने को कह आऊं।"

थियेटर में कुछ दिन चक्कर काट कर ही मनींद्र समझ गया कि ये बड़ा कठिन रास्ता है। कहानी चाहिए मन रमाने वाली, दृश्य चाहिए आंखें रमाने वाले। अलावा इसके चामत्कारिक सिचुएशन चाहिए, प्रत्येक अंक की समाप्ति पर तालियां। अभिनेताओं के उपयुक्त चरित्र।

पागलों की तरह भटक रहा है मनींद्र। फरमाइश के अनुरूप प्रत्येक बार लिखा हुआ बदलता है, घिस मांजकर नया बनाकर ले आता है। प्रत्येक बार कापी लौटा दी जाती है। किस ओर कुदृष्टि नहीं है, सारी दुपहर घूमाघाम कर लाल चेहरे से घर वापस लौटता है, फिर थोड़ी देर में निकलना पड़ता है।

थियेटर मालिक के घर जाता है तो सुनता है कि मालिक गये हैं थियेटर। भागा वहां। बहुत देर के इंतजार के बाद ग्रीन रूम में प्रवेश करने की अनुमति मिलती है। दोस्तों-अभिनेताओं के साथ महफिल सजाये बैठे हैं। कनखी से मनींद्र को देखकर कहा, "आइये मनींद्र बाबू। देखें आपकी कापी। ठीक करके लाये हैं न ?"

"लाया हूं।" मनींद्र ने कहा। हृदय की धड़कन ही नहीं बढ़ जाती, गला भी कांपता है।

"पढ़िये, सुनूं तो।"

थोड़ा-सा पढ़ता है, टोका जाता है, फिर से पढ़ता है, काटकर सुधारना पड़ता है। एक दृश्य के अंतिम संवाद को सुनकर मुख्य ऐक्ट्रेस चमेली हंसी के मारे बेहाल। "रुकिये आप मनींद्र बाबू। ऐसी बातें भी आपकी कलम से निकलती हैं…। मारे हंसी के मर जाऊंगी।"

थोड़ा-थोड़ा खुलता है मनींद्र का मुंह। पूरी तरह न स्वीकारते हुए कहता है, "ये सीन मैंने रिलीफ के लिए दिया है। इसके बाद है एक मृत्यु का दृश्य।" असल में हंसी वाला दृश्य उसके भी दिमाग की उपज नहीं थी। थियेटर का पाला हुआ भांड अमृत नंदी के लिए मालिक की अनुमति से उसे जोड़ना पड़ा था।

मृत्यु दृश्य को फिर चमेली ने नहीं सुना। कुछ काम है का बहाना करके खिसक

गयी। सिर के बालों को ठीक करते-करते डायरेक्टर की ओर कनखी से देखती हुई बोली, "आपकी गाड़ी तो नीचे है ना सुहास बाबू ?" सुहास भी पीछे-पीछे निकल गया। आज थियेटर की छुट्टी।

सब लोगों के चले जाने के बाद मालिक ने कहा—

"आपका नाटक तो चमेली को एकदम पसंद नहीं आयी सान्याल बाबू।"

"क्यों, स्टोरी तो खूब—"

"स्टोरी से थोड़े कुछ हो रहा है। उस मृत्यु दृश्य को एकदम निकाल देना होगा। सीन जमता जरूर, लेकिन क्या किया जाये ? उस सीन में यदि उसका पति मारा जाता है तो लड़की को विधवा नहीं बनना पड़ेगा ?"

"अगर हुई तो।"

"मानव चरित्र के विषय में इतनी-सी जानकारी लेकर आप नाटक लिखते हैं। अरे साहब विधवा होने से सफेद साड़ी जो पहननी पड़ेगी। पहले अंक में ही यदि नायिका विधवा होती है तो चमेली को पूरा नाटक ही सादे कपड़े में प्ले करना होगा।" सिगरेट का हल्का-हल्का कश लेते हुए आंखें नीचे कर नृपनाथ बाबू ने कहा, "चमेली इसके लिए बिलकुल तैयार न होगी।"

मनींद्र का चेहरा उतर गया।

"तब ?"

सारे धुएं को अपने मुंह और नाक से बराबर छोड़ते हुए नृपनाथ बाबू ने आंखें खोलीं, "उपाय मैंने सोचा है। आपको और कष्ट नहीं उठाना होगा। कापी मेरे पास छोड़ जाइये। जो जरूरत होगी मैं ही कर लूंगा।"

"आप करेंगे ?"

नृपनाथ बाबू हंसे नहीं। हंसने जैसा चेहरा भर बना लिया। "क्यों मैं नहीं लिख सकता सोचते हैं। अरे साहब, पचपन वर्ष उम्र हुई, कम-से-कम सौ नाटक इन हाथों से निकल गये हैं। जान रखिए कि सभी नाटकों में दस-बारह आना मेरा ही लिखा है। साहब, आप लोग तो लिखकर ही संतुष्ट हो गये, आर्ट हुआ कि नहीं यही देखकर खुश। मुझे देखना पड़ता है, इससे भी बड़ी बात। हमारे अभिनेता अभिनेत्रियों के लायक है या नहीं। लोग पसंद करेंगे कि नहीं। और भी सरल भाषा में, रुपया।"

एक बार और छाती को धुएं से भर लिया नृपनाथ बाबू ने। एक बार और

छोड़कर बोले, "अपना नाटक छोड़ जाइये । कुछ सोचियेगा नहीं । मान लीजिए, पति को न मरवा कर वैसे ही कहीं भेजा जा सकता है ।"

"जा सकता है ।" मनींद्र ने भरी हुई आवाज में कहा ।

"बस, ऐसा होते ही गोलमाल खत्म हुआ । बारह वर्ष तक चमेली को सफेद साड़ी नहीं पहननी होगी । बल्कि पति के खो जाने का इफेक्ट आपको मिल रहा है। साहब, केवल फार्मूला । नाटक लिखना फार्मूला के अलावा और कुछ नहीं । ए और बी मिलाकर होल स्क्वायर कर दीजिये। फिर तो सब अपने आप ही हो जायेगा । और भी एक गलती है कि नायिका की उम्र छब्बीस की है आपको उसको अठारह-उन्नीस करना होगा ।"

छब्बीस वर्ष की उम्र वाली लड़की का पार्ट चमेली क्यों लेगी ।

सहज स्वीकार न करने के भाव से मनींद्र ने कहा, "उसकी उम्र तो सुना है—"

"छत्तीस ।" निर्विकार भाव से नृपनाथ बाबू ने कहा, "इसको मैंने ही डिस्कवर किया था। उसकी उम्र थी उस समय सत्रह, मेरी छत्तीस ।" कहते-कहते नृपनाथ बाबू उदास हो गये, वह सब छोड़िए, "चमेली की उम्र है छत्तीस, लेकिन बीस वर्ष से अधिक किसी लड़की का पार्ट आज तक उसने नहीं किया है । चालीस वर्ष की न होने तक इस लाइन में कोई भी प्रौढ़ा मौसी बुआ का पार्ट नहीं लेना चाहती है ।"

स्तंभित मनींद्र की ओर देखकर नृपनाथ ने कहा, "आपको और कुछ भी नहीं सोचना होगा । जान रखिए कि आपका नाटक मनोनुकूल हो गया है ।"

"मेरा नाटक ।" इतने हल्के से ये कुछ शब्द निकले कि मनींद्र लगा कि उसने किसी और की आवाज सुनी है ।

"हां, आपका नाटक ।" नृपनाथ ने प्रसन्न होकर हंसते हुए कहा, "नाटक तो आपका ही है। दिवालों में पोस्टर लगेगा देखियेगा। अखबारों में आलोचना होगी । रिहर्सल के दिन कुछ रुपया भी ले जाइयेगा ।"

उस दिन रेस्तरां में चाय का प्याला ठंडा कर मनींद्र बहुत देर तक सोचता रहा, वह खुशी होगा कि नहीं । दिवालों पर पोस्टर। अखबारों के स्तंभों में बड़ाई। रिहर्सल के दिन रुपया। उसका नाटक । उसका ही तो। आर्ट ? ठंडी चाय के साथ एक भुंगा मुंह में चला आया, थू करके टेबल पर ही थूक मनींद्र ने सोचा,

ये सब बातें जितनी ही कम सोची जायें उतना ही अच्छा है। इतना ही यदि आर्ट से लगाव है तो छत पर जाकर बंशी ही बजा सकता है या बंद कमरे में बेहाला बजाता रहे। इस रास्ते चला आया क्यों? उपन्यास को यदि नाटक बनाने में कोई बाधा नहीं हो तो थोड़ी से उलट फेर में ही आपत्ति कैसी।

सुनकर शांति एकदम करीब खिसक आयी। अपना तकिया छोड़ मनींद्र के साथ एक ही तकिये पर सिर रख कर बोली, "सच में? तुम्हारा नाटक स्टेज होगा। सच कह रहे हो?"

"मेरा नाटक।" अंधेरे में मनींद्र की आवाज सुनायी दी केवल, "क्या पता मेरा है कि नहीं। फिर भी लोग जानेंगे कि मेरा है, कहेंगे कि मेरा है" कहते-कहते जैसे थोड़ा उत्तेजित हो उठा मनींद्र, शांति की चिबुक को कड़े हाथों से उठाया, उठी हुई उंगलियां कांप रही हैं। सीधी नजरें मिलाते हुए कहा, "कल्पना करो शांति कि तुम मां बनी हो, लेकिन वह संतान मेरी नहीं है। तुम्हारी गोद के सुंदर लड़के की सभी प्रसंशा कर रहे हैं। कोई उसके बाल, कोई उसकी नाक के साथ मेरी तुलना कर रहा है. 'ठीक अपने पिता जैसा हुआ'—मैं स्मित, आश्चर्यचकित लज्जित चेहरे से सब सुन रहा हूं, माने ले रहा हूं बिना कुछ कहे। मेरे उस समय के चेहरे की कल्पना कर सकती हो…"

अचानक मनींद्र चुप हो गया। शांति ने एक हाथ उसके मुंह पर रख दिया है।

गीता और अणिमा आ गयी हैं इस मकान में, ललिता और स्टेला आयेंगी अगले महीने। नीला मुलाकात करने आयी थी।

घर में केवल एक पतले बार्डर की धोती पहने है शकुंतला। और अस्त-व्यस्त-सी एक समीज। कहा, "सब तो ठीक-ठाक हो गया है। नौकरी भी छोड़ दी नर्सिंग होम के भरोसे। आफिस तो बना लिया है लेकिन एक टेबल तक नहीं है। दीजिए न कहीं से चंदा मांगकर। देंगी?"

"मुझे कौन चंदा देगा।"

शकुंतला मुंह दबाकर हंसी, "देगा, देगा। सब कोई देगा। वह कवि इंद्रजीत है न, आपके मकान में। उससे मांग कर देखिये न।"

"पागल हो गयी हैं। उसके पास कहां से आयेगा रुपया। मांगने से कहेगा, मैं ठहरा कवि, रमता जोगी बहता पानी, रुपये के बारे में जानता ही क्या हूं। उसकी

आशा छोड़ दीजिये ।"

"ऊंह्" शकुंतला ने कहा, "हम लोग इतनी जल्दी आशा छोड़ने वाले नहीं हैं। अच्छा यदि आपसे नहीं हो सके तो अपनी शांति दी से कहलवाइये न। मुझको तो लगता है कि आपकी शांति दी से जरूर होगा।"

शांति दी से हो सकेगा। नीला से नहीं। क्या पता शकुंतला की बातों में क्या छिपा था, नीला का मन जल उठा, कहीं जैसे मजाक के तौर पर कही गयी बातों में इंद्रयुद्ध-सा भाव छिपा है।

कुछ खराब-सा लगा नीला को, अचानक ऊंची आवाज में बोली, "मुझसे भी हो सकेगा। इंद्रजीत बाबू के सेवासत्र के लिए चंदा अदा करके छोड़ूंगी।"

"कीजिए तब।" नकली बालों का ऊंचा-सा जूड़ा बनाकर गर्दन के पास की फुंसियां फोड़ते हुए शकुंतला ने कहा।

दो बार इंद्रजीत के दरवाजे को खड़खड़ाया नीला ने। इसके बाद थोड़ा-सा ढकेलकर दबे पांव से भीतर चली आयी। सामान्य अवस्था में आती कि नहीं शक था। लेकिन शकुंतला का मजाक अभी तक याद है। लेकिन दो कदम जाकर फिर और आना पड़ा। फिर से दरवाजा बंद कर बाहर आकर खड़ी हो गयी नीला। आंखें दोनों जम गयीं, दोनों कपोलों का सारा रक्त सूखकर मानो जमा हो गया हो स्तब्ध स्पंदित हृदय पिंड में।

फिर से दो-एक कदम चलकर आ गयी थी सीढ़ी के पास। अचानक पीछे से आकर किसी ने खींचा। आंख उठाकर देखा शांति। लगता है उसी के पीछे-पीछे निकल आयी। सीढ़ी के नीचे दोनों का आमना-सामना हुआ। कई बार पलकें झपकायीं नीला ने। पलकें दोनों भीग उठी हैं। शांति तभी से निर्निमेष दृष्टि से देख रही है। अंधेरे में मकड़ी के जालों से भरे कोने के पास खड़ी वही निर्लज्ज, निर्मम पथरीली आंखों के सामने नीला का पूरा शरीर थरथरा उठा। कातर स्वर में, जैसे कोई बुरा स्वप्न देखा हो, नीला चीख उठी, 'शांति दी, तुम ऐसी हो।" कितना आश्चर्य, जिससे डरती है, जिससे घृणा करती है, उसी शांति को जी जान से जकड़ लिया नीला ने।

शांति ने धीरे-धीरे उसे परे कर दिया, लेकिन नीला का एक हाथ उसकी मुट्ठी में ही रहा। कठोर आवाज में शांति ने कहा, "नीला सुनो यहां इस तरह बाहर खड़े होकर कोई बात नहीं हो सकती। कमरे में आओ।"

कमरे के भीतर नीला को तखत पर बैठाकर शांति प्रत्येक बात को शांत लेकिन दृढ़ता से कहती हुई बोली, "तुमने कितना देखा पूछूंगी नहीं। लगता है सब कुछ ही देखा है। तुम इस वक्त शाम को उसके कमरे में क्यों गयीं उससे भी मेरा कोई सरोकार नहीं है, फिर भी उत्सुकता एवं थोड़ी स्त्रीसुलभ जिज्ञासा है।"

थोड़ा-सा दम लेकर शांति ने कहा, "अच्छा ही हुआ, आज तुमने सब जान लिया। मैंने भी कुछ दिनों से तुमको सब कुछ खोलकर बता देने को सोचा था। लेकिन हजार हो एक भद्र औरत हूं न, बस इसी संकोच को नहीं त्याग सकी। सावधान कर दूंगी यह सोचने भी नहीं कर सकी। आज यह अच्छा ही हुआ नीला। ज्यादा दूर जाने से पहले ही तुम जान गयीं कि इस रास्ते में सर्वनाश ही है। मुझसे अच्छा भाग्य तुम्हारा है।"

"लेकिन शांति दी," नीला इतनी देर बाद बोल सकी, "मनिदा जानते हैं ?"

"कौन मनिदा, ओ. हमारे कहानीकार, नाटककार की बात कह रही हो ?" कड़वे उपहास से शांति के दोनों ओंठ थोड़े टेढ़े हो गये। "क्या पता भाई, और उनके जानने के लिए ही तो यह जाल फेंका है।"

"उनके जानने के लिए ?"

"हां भाई। इस आत्मरति में रत आर्टिस्ट की आत्म प्रतारण को मैं खत्म करना चाहती हूं। इन आर्टिस्टों को तुम पहचानती नहीं हो नीला। ये लोग हरेक को धोखा देते जाते हैं, हरेक को, अंत में खुद अपने को। इन लोगों की किताबों के पन्ने-पन्ने पर दुर्दशा, अभाव, दैन्यता की जयध्वनि है। सब कुछ गंवाने में ही पाने का भाव, ऐसा है नीति वाक्य। लेकिन अपने जीवन में कामना करते हैं स्वतंत्रता की। ओह, यदि तुम इन लोगों का वह नीच, लोभी रूप देख पातीं। रूप, जय, यश केवल और, और ही स्वर है इनका। इनकी किताबों के पन्ने-पन्ने पर पति की सहयोगिनी ही महान है, सतीत्व तो केवल कुसंस्कार है। लेकिन व्यक्तिगत जीवन में ये ही लोग कितने शक्की, अपनी पत्नियों से सतीत्व के शुल्क की अदायगी की आशा बड़ी तेजी से करते हैं। ऐसी धोखाधड़ी, कला एवं व्यक्तिगत जीवन के बीच के पर्दे का अंदर-बाहर में सब मिलाकर रख दूंगी।"

"अपनी इज्जत गिरवी रखकर, शांति दी ?"

"इज्जत गिरवी रखकर ? इज्जत अब रह ही कहां गयी है भाई ?" थकी

आवाज में शांति ने कहा, "कितनी इज्जत लेकर पैदा ही हुई थी, कितनी पायी है मैंने। केवल खोया ही तो है। ब्याह हुआ, कुछ मिला नहीं नीला। न निश्चित जीवन, न निश्चित गृहस्थी। बल्कि बहुत कुछ चला ही गया। उदासीन पति, अपनी गढ़ी हुई एक विकृत विकलांग कृति में निमग्न। रुपया नहीं, खाना नहीं बनता है। ये सब चिंता, सब भार जैसे मेरे ही ऊपर है। समूचे जीवन से यही सीखा कि कुछ न पाने का दुख भूल जाऊंगी। जीवन में और कोई लालसा नहीं और कोई सुख नहीं। नहीं तो, जिंदा रहने के लिए केवल जिंदा रहने के लिए जिसे प्रेम का अभिनय करना पड़ता हो, वह जीवन को कैसे प्यार कर सकता है, बोल सकती हो ?"

"केवल अभिनय ही ?"

"अभिनय, अभिनय, अभिनय। नहीं तो," शांति इतनी देर तक कठोर मुद्रा में बातें कर रही थी, अचानक जैसे खुलकर नीला के पास आ बैठी, "नहीं तो तुम क्या समझती हो उस निकम्मे, तुकबंदी करने वाले छोकरे के साथ मैं···"

हाथ बढ़ाकर एक तकिया गोदी के पास खींचकर शांति ने उसमें चेहरा छिपाकर मानो हंसी के वेग को संभाल लिया।

9

"सब देख-समझकर अविनाश ने कहा। मैं दूंगा टेलीफोन।" पाकेट से चेक बुक निकाल कर बोले, "कितना रुपया चाहिए ?"

शकुंतला उनकी कुर्सी के हत्थे पर हाथ रखे खड़ी हुई थी। कुंठित स्वर में बोली, "ये लेकिन आप बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कह रहे हैं। हम लोग कौन कैसे हैं बिना जाने ही इतना रुपया—"

"कोई जरूरत नहीं, कोई जरूरत नहीं," अविनाश ने कहा, "नीला से मैंने सब सुन लिया है। इन सब मामलों में मैं बड़ा उत्साही हूं। पांच नारी कल्याण आश्रम में प्रत्येक महीने पचास-पचास रुपया चंदा देता हूं, जानती हैं। फिर ये तो

सेवा है। और भी ऊंची, और भी महान। केवल नारियों का कल्याण ही नहीं, सबों की सेवा।"

"जी हां," शकुंतला हल्के स्वर में बोली, "सभी लोगों की, लड़के-लड़कियां, बच्चे, सब की सेवा सुश्रूषा के लिए हम लोग तैयार हैं। बूढ़े—जैसे आपके समान बूढ़े लोगों के लिए भी।"

"बूढ़ा ?" अचानक छाती से खांसी का एक ठसका उठ आया अविनाश के गले में। संभल जाने के बाद कहा, "ठीक ही, बूढ़ा।" लंबी सांस छोड़ते हुए कहा, "बूढ़ों की चिंता कोई नहीं करता है मिस सरकार। तो फिर चेक···"

"नीला को दे दीजियेगा।"

"वही ठीक है, वही ठीक।" अविनाश उठकर बोले--

"आज मैं चलता हूं तब।"

"अच्छी तरह ओढ़-आढ़कर जाइये। आज बाहर बहुत सर्दी है।"

उपदेश को अच्छी तरह नहीं माना अविनाश ने, फिर भी गले को मफलर से ढकना नहीं भूले। ये सब कम उम्र की लड़कियां क्या समझती हैं उन लोगों को। गले तक बंद कुर्ते के बटन लगाते-लगाते अविनाश ने तिरछी नजर से देखा, खुद लेकिन बेपरवाह। अगहन महीने की ऐसी सर्दी में बिना बांह का ब्लाउज पहने हैं, आधे कंधे में पल्ला है, आधा खाली, पैरों में चप्पल। जितनी होशियारी है सब क्या केवल अविनाश के लिए ही ?

रास्ते पर आकर भी अविनाश का अफसोस कम नहीं हो पा रहा है। अफसोस के साथ खूब हल्के भाव से मिली हुई है उत्तेजित अनुभूति। कुर्सी के हत्थे पर हाथ रखे खड़ी थी शकुंतला, और ऐसी सब लड़कियों की जैसी हालत बनी रहती है, प्रायः सभी का आंचल खिसक-खिसक जा रहा था, दूसरे ही क्षण झुककर उठा लेती थीं। दो एक बार गर्दन घुमाकर बात करते हुए शकुंतला के दो-एक उड़ते हुए केश अविनाश की सफेदी की ओर इशारे करते हुए, तुरंत बनाई हुई दाढ़ी पर उड़कर गिर पड़े थे। चोटी में ही तो इलेक्ट्रिसिटी है, लेकिन उड़ते हुए केश ही कुछ कम हैं क्या, बाबा ? ऊपर से छोकरी कहती हैं हम लोगों को जानते नहीं, पहचानते नहीं, इतना रुपया अचानक दे बैठे। अरे बिन जानी पहचानी जगह में अविनाश जीवन में क्या पहली बार रुपया उंड़ेल रहा है। बिजनेस में रिस्क तो है ही। प्रत्येक शनिवार को जितने घोड़ों पर पैसा लगाते हैं,

वे कोई ऊंचे खानदान के नहीं हैं। फिर भी यदि भाग्य हो, वे ही रुपया देते हैं।

ये भी एक नशे के समान हो गया है अविनाश के लिए। इधर-उधर खाली रुपया उड़ाते चलना। अकेला आदमी इतने रुपये की क्या जरूरत। जितना उड़ा रहे हैं, वह सब असली नहीं है, जुल्फों से तेल टपक रहा है।

छ बाई एफ मकान के सामने अविनाश खड़े हैं। छड़ी को चबूतरे पर टिका दिया। इस मकान में भी एक बार जाना होगा। कैसी एक सर्वनाशी लत भूत के समान गर्दन पर सवार हो गयी है। चरखी के समान चक्कर लगाना पड़ रहा है।

तन मर गया है, मन नहीं मरा—ये बड़ी मार्मिक ट्रैजिडी है। मुर्दा शरीर में एक जीवित, ताजा भूख से व्याकुल मन ढो रहे हैं, अविनाश। नहीं तो क्या जरूरत थी नीला से जरा-सा सुनकर कि नहीं भी सुनकर आज शाम को इस मकान में छुपकर दौड़ आना। छुपाकर वह भी नीला से छुपाकर।

इंद्रजीत कितना ही क्यों न देता, अविनाश ने दिया उसका चौगुना। चेक पाकर नीला खुश हुई। शकुंतला के सामने मुंह की बात तो रह गयी। लेकिन मुंह की बात रहने से ही मन के ऊपर पड़ा हुआ बोझ कम नहीं हुआ। इंद्रजीत से हार की ग्लानि क्या कम हो सकती है अविनाश की विजय से ? क्या पता ?

लेकिन इतना जानने समझने की जरूरत ही क्या ? हाथों हाथ जो मिलता है, उसी का मूल्य ऊंचा है। नीला ने उस दिन अविनाश को यों ही दो गाने सुना दिये। कल ही शकुंतला को चेक दे आना होगा।

और फिर रास्ते पर आकर अविनाश ने मफलर उतार दिया। आज जितनी सर्दी लगनी हो लगे। माथे की शिरायें कांप रही हैं, गर्दन के पास कर्णफूलों में थोड़ी ठंडी हवाओं का झोंका लगा।

न होगा तो कल च्यवनप्राश की मात्रा बढ़ा दी जायेगी। और पुराना घी। थोड़ी और देर तक मालिश करवानी होगी।

प्रमथ की दुकान के सामने से गुजरते वक्त अविनाश एक बार रुककर खड़े हो गये। लोहे की छड़ों के भीतर से पता नहीं कौन उत्सुक-सी चार आंखों से उनको देख रहा है। एक मिनट खड़े होकर साइन बोर्ड पढ़ा। क्या सोचकर घुस गये अंदर।

प्रमथ उठकर खड़ा हो गया साथ ही साथ, "आइए सर। क्या चाहिए।"

क्या चाहिए ? इधर-उधर अच्छी तरह से देखा अविनाश ने। दुकान की जो

सूरत है, ज्यादा कुछ मिल सकेगा ऐसा तो लगता नहीं है। जल्दबाजी में इस दुकान में चले आना ही गलती हुई है। उनका बंधा-बंधाया सुनार था, उसके पास जाने से ही ठीक होता।

ताड़ी खाने में घुसकर नया शराबी जैसे दबे गले से विनती करता हुआ पेयपदार्थ के लिए फर्माइश करता है, कुछ वैसी ही हालत में अविनाश ने कहा, "प्रेजेंट देने लायक कुछ है?"

"है, सर। क्या चाहिए बोलिये। अंगूठी ?—"

"झुमका ?"

झुमके से बात थोड़ी फैल सकती है। अविनाश इस मुहल्ले के सुनार को इतना जानने नहीं देना चाहते।

बोले, "अंगूठी ठीक है।"

अदृश्य सी एक हंसी खेल गयी प्रमथ के चेहरे पर। बक्सा खोला। "साइज ? इस साइज में चलेगी ?"

साइज की बात अविनाश ने सोची नहीं।

चंपे के फूल समान एक उंगली में सोने की एक बेड़ी पहनायेंगे। इसी कल्पना से उन्मत हो गये थे, एक अंगूठी पसंद कर कहा, "यही ठीक लगती है।"

कीमत पर अविनाश कभी झिकझिक नहीं करते हैं। नीले कागज में मुड़ी हुई अंगूठी को झट से रख लिया अपनी पाकेट में। एक भारी रिस्क लेने जा रहे हैं। लेकिन ऐसे कामों में साहस जरूर चाहिए। सिनेमा देखा है, गाना सुनाया है। अंग-अंग···अंगूठी नहीं लेगी ?

दरवाजा फिर से बंद कर भीतर आकर बैठ गया प्रमथ। अंगूठी कोई खरीदेगा सोचकर ही तो और एक व्यक्ति ने अंगूठी उस दिन बेच दी थी। खरीद-बिक्री, जीना-मरना। संसार सागर के दो किनारे। कथावाचक पुजारी से और अच्छी तरह इस तात्विक बात को समझ आना होगा।

इन लोहे की छड़ों के बीच से दिखायी पड़ता है, खिड़कियों में रंग विरंगी साड़ियां लटक रही हैं।

किनू ग्वाले की गली के सूखे मरुस्थल में फिर से धीरे-धीरे जीवन जल की वर्षा हो रही है जैसे। लेकिन प्राण तो केवल रंग में ही नहीं है, शब्द में भी है। शाम को थोड़ी-सी भांग चढ़ा ली थी प्रमथ ने। उससे नशा नहीं होता है, लेकिन बांयें तबले

की थाप पर पड़ती हुई घुंघरुओं की आवाज सुनायी पड़ती है। बसाक बाबू के राज्य में फर्श बिछते, गाव तकिया पड़ते, ढक्कन खुलते सोड़े की बोतलों के शब्द की तरह नशे में चूर आवाजें पानी के बुलबुलों की तरह हवा में तैरतीं।

दुबारा वे दिन लौट रहे हैं। उसकी स्पष्ट पग ध्वनि सुन पा रहा है प्रमथ।

तीखी वितृष्णा के कुंड से प्रवाहित तीव्र तृष्णा की धारा खोजकर नीला को आश्चर्य हुआ। नहीं तो उस दिन इंद्रजीत के कमरे में जो कुछ देखकर लौट आयी थी, उसके बाद तो मन का विमुख होना ही उचित था। लेकिन घृणा भी जिस स्नेह की तरलता से जकड़ी हुई, एक ऊंची लौ के समान कांप रही है, जल-जलकर राख होना चाहती है।

नाराजगी होगी क्या। जो भी देखा हो उस दिन, प्रत्यक्ष देखने से बढ़कर भी एक चीज है, मन की सहमति। वही मन यदि कहता है कि इंद्रजीत का कोई कसूर नहीं, इंद्रजीत शांति का एक निर्मल खिलौना मात्र है तब नीला करेगी क्या।

एक तल्ले का कमरा अंधेरा है। पैर रखने से ही वर्फ हो जाता है, पत्ता तक ठंडा हो जाता है। विदीर्ण धरती के भीतर से असंख्य अदृश्य हाथ अस्वस्थ स्नेह से बांध लेते हैं। जीवतत्व में वर्णित किसी सर्प की लाल-लाल जीभ का।

दरवाजा खोलते ही कुछ आवाज हुई। इंद्रजीत ने आंखें मलते हुए देखा। "कौन ?"

नीला ने उत्तर नहीं दिया। और भी आगे बढ़कर खोल दी सिरहाने की खिड़की। और भी एक धूप की किरण आ पड़ी कमरे में। किरण भी बेरंग अस्वाभाविक, नष्ट प्राय: फेफड़े की जान लेवा खांसी के साथ निकले आये हुए खून की तरह।

इंद्रजीत ने दुबारा पूछा, "कौन, शांति ?"

खुद ही होंठों पर दांत कस गये नीला के।

"नहीं मैं। सुना है कि आप बीमार हैं, इसीलिए देखने चली आयी।"

"अच्छा ही किया। बैठिये। लेकिन खिड़की क्यों खोल दी ?"

"वाह रे। थोड़ा उजाला नहीं होगा कमरे में।"

"नहीं," फिर से आंखें बंद करके इंद्रजीत ने कहा, "मैं अंधेरे में ही ठीक रहता हूं। अंधकार ही आदिम है, पृथ्वी का असली रंग, प्रकाश नकली है, ऊपरी आवरण है, सब जगह पहुंचता नहीं है।"

आज बहुत साहस जुटा कर नीला इस कमरे में आयी है, मन से बहुत समझौता करने के बाद। इंद्रजीत के प्रलाप का विकार सुनना भी ये कोई पहली बार नहीं है। स्मित हंसी से बोली, "वैसा होने दीजिये। हम लोग लड़कियां हैं न। हम लोगों को थोड़े से रंग-रोगन की जरूरत पड़ती है।"

थोड़ा घूमकर सिरहाने की ओर खड़ी हो गयी नीला, इंद्रजीत की रोगशय्या के ऊपर लंबी एक छाया पड़ी। अपनी वह छाया पहचान ली नीला ने। रक्त-मांस रहित सुंदर एक औरत--मूर्ति नहीं, आभास मात्र। इंद्रजीत के दोनों पैरों से लेकर गले तक ढकी हुई है एक मैली चादर। खुले रहने से शायद नीला के सिर की छाया उसके पैरों पर पड़ती।

इंद्रजीत का चेहरा उतरा हुआ है लेकिन आंखें दोनों चमक रही हैं। देखने की मुद्रा तेज, कमोबेश दोनों होंठों पर मधुर शिशुहास्य।

छाती के भीतर से कंपकंपाती हुई एक अनुभूति नीला के सर्वांग में उद्वेलित हो उठी, जो केवल करुणा नहीं, केवल करुणा ही नहीं। इंद्रजीत के माथे पर हाथ रख कर बोली, "ओह, आपको तो तेज बुखार है।"

उस हाथ पर इंद्रजीत ने अपना गर्म हाथ रखकर कहा, "कितना बुखार है ?"

पल भर आत्मविस्तृत हो गयी थी, दूसरे ही क्षण खड़ी होकर, नीला ने कहा, "बहुत तेज। दवा खायी कि नहीं ?"

"खायी थी। लेकिन लगता है फिर खाने का समय हो गया है।"

"कहां है दवा बता दीजिये।"

इधर-उधर देखते हुए इंद्रजीत ने कहा, "आपसे नहीं हो सकेगा। शांति, शांति भाभी जानती हैं। उन्होंने ही रखी है। उनको बुला दीजिये।"

चमक रहित एक ज्वाला नीला की दोनों आंखों में जल उठते ही बुझ गयी। बोली, "शांति दी तो कमरे में नहीं हैं।"

"नहीं है ? कहां गयी ?" अप्रतिभ चेहरे के बिना दाढ़ी बने हुए सुंदर गालों पर हाथ फिराकर इंद्रजीत ने कहा, "तब रहने दीजिये। हो सके तो आप मुझे एक ग्लास पानी दे दीजिये।"

आज यदि नीचे आते हुए शांति दी के कमरे में ताला झूलते हुए नहीं देखती, तब इतना साहस होता कि नहीं इसी में संदेह है। निश्चय ही देखते हुए जाना निर्बलता है, एक चोर के समान चौकन्नापन, फिर भी नीला निश्चित होकर ही

इस कमरे में आयी है ।

पानी लाकर बोली, "और क्या चाहिए बोलिये ।"

खाली ग्लास देकर इंद्रजीत ने कहा, "और कुछ नहीं । उस बक्से के भीतर से एक किताब निकालकर देती जाइये। कविता पढ़कर सुनाने के लिए कहता, लेकिन आपको तो कविता अच्छी नहीं लगती।" इधर-उधर देखकर फिर कहा, "लेकिन वे लोग गये कहां। मुझे दवा देना है, बार्ली देना है, बिस्तर की चादर बदलना है···"

"कहां है दूसरी चादर, बोलिये। बदल देती हूं।"

फिर से असहाय, करुणा से हंसा इंद्रजीत, "कह नहीं सकता। शांति भाभी जानती हैं।"

होंठ काट लिए नीला ने। एक विषम स्पर्द्धा में उतरी है नीला। शकुंतला ने यदि उस दिन वैसा मजाक न किया होता।

धीरे-धीरे दरवाजा बंद कर चली तो आयी, लेकिन प्रतिज्ञा और भी दृढ़ हो गयी। इंद्रजीत को बचाना ही होगा, शांति के सर्वनाशी मोह के जाल में बंदी इस मक्खी का उद्धार करना ही होगा।

"खिड़की बंद कर दीजिये। रोशनी अच्छी नहीं लगती।" इंद्रजीत की बीमार याचना अभी तक कानों में गूंज रही है। याद आयी शांति की बात। एक विचित्र प्रकार के आर्टिस्ट हैं ये सब। दुख से भरा जीवन, शोक से भरा जीवन, नष्ट होता हुआ जीवन। खुद को भी उसी क्षय रोग में नष्ट कर लेने की ठान ली है। नीचे झुककर और भी नीचे अंत में एक खोह में भागकर ऊपर की कंकरीली जमीन के स्पर्श से बचाना चाहते हैं। स्थिर खड़े होकर आलंबन विहीन आकाश में अथवा पाताल में जीवन का सामना नहीं करेंगे। सिर झुकाकर भागने का रास्ता खोजेंगे, अपने रुग्ण मन के विकारों से एक ऐसे संसार का निर्माण करेंगे जो अशरीरी, रक्त-मांस-मज्जा से युक्त स्थूल रूप नहीं है, एक दुर्बल इंप्रेशन मात्र को ही ऊंची सार वस्तु समझा है। आंखें मलकर साहस से देखेंगे नहीं इसकी जमीन की ओर, वह जमीन धूप में केवल पथराती ही नहीं है चमकती भी है, फूल खिलते हैं, धूप निकलती है, बर्फ गल जाती है उस प्रकाश के मिलन स्थल के महान सुख में। उस सुख को पाने का साहस कहां है इनमें। बीच-बीच में खोह से सिर निकाल लेते हैं, फिर भीतर घुसा लेते हैं। उस जीवन से, जीवन की इस बिडंबना से इंद्रजीत को बचायेगी नीला।

शाम को गाने के स्कूल जाते समय मुलाकात हुई शांति से।

"कब लौटीं शांति दी ?"

"ये ही थोड़ी देर पहले भाई।"

"कहां गयी थीं ?"

"उनके नाटक के रिहर्सल में। आज फुल रिहर्सल था न, स्पेशल निमंत्रण था।"

अनिश्चित भाव से नीला की आवाज तेज हो गयी। "आप थियेटर गयी थीं, इधर बेचारे इंद्रजीत बाबू—"

"अकेले पड़े बुखार में रुई उड़े गद्दे से मैली चादर को ओढ़कर प्रलाप कर रहे थे, यही कहोगी न ? लेकिन देखने-सुनने वाले को तो छोड़ के ही गयी थी—भाई।"

"देखने-सुनने वाले को ?" नीला ने जैसे न समझने का भाव दिखाया, "वह है कौन ?"

उत्तर न देकर शांति ने एक सेफ्टीपिन नीला के सामने बढ़ाते हुए कहा, "इसे पकड़ो। देख लो, तुम्हारी ही तो है। इइंद्रजीत के बिस्तर की चादर बदलते समय पड़ी मिली।"

शांति के चेहरे की ओर देखने का साहस नीला में नहीं था। सकुचाते हुए हाथ बढ़ा दिया, मशीन की तरह ही चूड़ी में अटका लिया।

नीला की बदलती हुई मुद्रा की ओर देखकर शांति मन ही मन हंसी। बहुत अच्छा लगता है कम उम्र की लड़कियों का इस तरह रंजित हो जाना, जैसे अचानक पकड़े जाने की शर्म। उम्र हो गयी है शांति की, इस उम्र में अब प्रेम पर विश्वास नहीं है, लेकिन प्रेम किया है। इनकी उम्र कम है, इसीलिए अभी प्रेम में पड़ रही है, दोनों को एक में मिलाकर देख रही हैं।

10

शांति लेकिन पूरा नाटक देखे बिना ही चली आयी थी। नहीं आये बिना कोई उपाय नहीं था।

ऐसा कुछ घटेगा, वह जानती थी जैसे। पहले ही भनक मिल गयी थी। अशुभ होने के पहले बायीं आंख के फड़कने जैसे। हाथ से छूटकर शीशा गिर जाने जैसा। स्त्री-सुलभ, अथवा और भी सही तरीके से कहा जाय तो पशुसुलभ, सहजात लेकिन दोष रहित अलौकिक घ्राण शक्ति।

नहीं तो सारे दिन मनींद्र पर्दे के उस ओर लेटे-लेटे अपना नाटक लिख रहा है, अधजली बीड़ी, सिगरेट का जमीन पर ढेर लग गया है, उस समय तो कहां लगा कि जाऊं एक बार, वह क्या लिख रहा है देख आऊं। अथवा मनींद्र की अनुपस्थिति में एक बार भी कापी उलटकर देखने की उत्सुकता नहीं हुई। इस तरफ बैठकर बाघबंदी खेल रही थी। अपने खेल में ही मग्न थी।

लेकिन आज शाम को उनके मित्र सदानंद ने जब आकर नाटक का पूरा रिहर्सल देखने की बात उठायी, तब पता नहीं क्यों उत्सुकता ही ज्यादा हुई। शुरू होने के पहले परिचय हुआ थियेटर के मालिक नृपनाथ बाबू से और भी दो एक लोगों के साथ। किसी-किसी ने पूछा आपने तो नाटक पहले ही पढ़ लिया है न ? हम लोगों ने उसे किस प्रकार रूप दिया है आप केवल वही देखिये। शांति मुस्कराती हुई बैठी रही कुछ बोली नहीं।

उसके बाद शुरू हुआ। अंधेरा प्रेक्षागृह, मनींद्र बगल में। उसके भी बगल सदानंद। काठ होकर शांति ने पहला अंक देखा। आश्चर्य, ये नाटक उसने पढ़ा नहीं, इसकी घटनायें उसकी जानी हुई नहीं हैं, फिर भी सब जाना पहचाना सा लगता है क्यों। जो लोग साज-सज्जा किये हुए अंग-संचालित करते हुए मंच पर बोल रहे हैं, उन लोगों को यहां पहली बार नहीं देख रही है शांति, जरूरत पड़ने पर वह शायद इस नाटक के एक-दो संवाद पहले से ही प्राप्त कर सकती है।

प्रथम अंक की समाप्ति पर मनींद्र उठ गया। सज्जागृह से उसे बुलाया गया है। नाटक जितना ही आगे बढ़ता है, शांति की अस्थिरता उतनी ही बढ़ती है। बगल की सीट खाली, उसके बगल में सदानंद मुग्ध आंखों से अभिनय देख रहा है।

दूसरे अंक के अंत तक मनींद्र नहीं आया। अंधेरे में दोनों आंखें जल उठीं शांति की। आयेगा नहीं, जानती है। साहस नहीं कि वह शांति का सामना कर सके।

लेकिन तबतक शांति के माथे के रोम-रोम में पसीना चुहचुहा आया है। बार-बार रूमाल से मुंह पोंछने पर भी स्थिर नहीं किया जा रहा है तन-मन का स्वेद रोमांच। इतनी देर में समझ गयी है शांति, क्यों नाटक के अभिनेता-अभिनेत्री परिचित से लग रहे हैं, आगे की घटनायें लगती हैं कि जानी हुई हैं।

चौथे अंक की शुरुआत पर और नहीं रुक सकी। शांति अचानक सीट छोड़कर उठ खड़ी हुई। सदानंद की ओर देखकर बोली, "मेरा सिर बहुत दर्द कर रहा है, जरा घर तक पहुंचा आयेंगे।"

सदानंद तन्मय होकर देख रहा था। चकित होकर बोल, "अंत तक देखेंगी नहीं ?"

"मेरा सिर बहुत घूम रहा है सदानंद बाबू। अंत तक देखने पर दम घुटकर मर जाऊंगी।"

बहुत ही ठंडी निर्जीव आवाज में कहा था शांति ने, जरा सी भी उत्तेजना नहीं थी। लेकिन फिर भी सदानंद के कानों को भी कैसी विचित्र, बेसुरी सी लगी थी। तेज नजरों से देखा था शांति की ओर।

लगभग अंधेरा हाल। कुछ समझ नहीं पाया सदानंद। फिर भी सदानंद को लगा शांति का चेहरा जैसे बिना रंग रोगन की पत्थर की दीवाल, 'जिसमें छिद्र के समान अंधेरी दो आंखें, और छोटा सा हांफता खुला मुंह।

"मनि को बुलाऊं तब ?" सदानंद ने पूछा, हंसी में शांति ने कहा, "वे व्यस्त होंगे। अच्छा होगा आप मुझे पहुंचाकर कह दीजियेगा, मेरी तबीयत खराब थी सो चली गयी।"

नाटक का रिहर्सल खत्म हुआ था छह साढ़े छह बजे। लेकिन मनींद्र को उस दिन घर लौटते एक बजा था।

बे-आवाज दरवाजा बंद कर चुपचाप सोने जा रहा था, शांति उस समय तक बिस्तर पर उठकर बैठ गयी थी।

"तुम सोयी नहीं ?"

"नहीं" बोलते-बोलते उठकर खड़ी हो गयी शांति। अस्तव्यस्त, निरावरणसी, उठकर दरवाजे में चिटखनी लगा आयी।

"सदानंद से सुना तुम्हारी तबीयत खराब हो गयी थी, अंत तक न देखकर···"

"इसीलिए लगता है खूब जल्दी घर लौटे ? कैसी हूं देखने के लिए ?" इस अंधकार में कितनी अस्वाभाविक लग रही है शांति की आवाज। चेहरा मुखौटे से ढका हुआ मालूम देता है। देखते न देखते उस मुखौटे के नीचे छिपी सिलवट जैसे बिलकुल सपाट हो गयी, बिस्तर में आकर मनींद्र को जोर से जकड़ लिया शांति ने, "अपने नाटक में मुझे पार्ट दोगे।"

सोच में पड़ गया मनींद्र। विह्वल, गले से लिपटी शांति को अलग करता हुआ बोला, "क्या कह रही हो ?"

फिर से उठ बैठी शांति। मुखौटा धारी चेहरे के होंठ दोनों कड़े होकर टेढ़े हो गये केवल—"क्यों मेरा ही जीवन, मेरा ही चरित्र, मैं पार्ट नहीं कर सकूंगी ?" विगलित कंठ से बोली, "तुम्हारी चमेली, दामिनी, चपला से मैं बहुत अच्छा कर सकूंगी देखना।"

जड़ मनींद्र ने दूसरे ही क्षण शांति को हंसते हुए सुना। हल्की, बहती हुई सी हंसी।

"तुमने कोई गलत नीति नहीं अपनायी है। घर की बात को लेकर नाटक लिखना रुपया कमाने का गलत रास्ता नहीं है। लेकिन मेरे पार्ट लेने पर आपत्ति क्यों करते हो। आओ ना"···प्रगल्भ, तेज आवाज में शांति बोलती गयी, "आओ न, इसमें तो और भी ज्यादा रुपया मिलेगा ? घर की बात है जब, रुपया बाहर क्यों जाये।"

और नहीं सुना जाता, शांति का यह निष्ठुर, निश्चिंत गले का तेज प्रलाप। दरवाजा खोलकर बाहर निकल आया मनींद्र। माथे की नसें तड़क रही हैं, ठंडी हवा तो लगे थोड़ी।

और, दमघोंटू कमरे में, बिस्तर पर चित्त लेटकर तकिये में मुंह छिपा लिया शांति ने। आंखों के पानी में सब कुछ बहता चला जा रहा है, जाने दो। सारे शरीर में एक अश्रुसृत चेतना बह रही है। जली हुई दो आंखों के रास्ते से जितना निकल सकता है।

सब कुछ व्यर्थ हो गया इसमें कोई शक नहीं। मनींद्र की आंखों के सामने इतने दिन जो कुछ किया है शांति ने, और कोई पति होता तो पागल हो जाता। यद्यपि

मनींद्र सब कुछ जानता था, दोनों आंखें उसकी खुली हुई थीं, लेकिन उन आंखों में ईर्ष्या नहीं, मन ही मन में सब कुछ भर लिया था, और इतने दिनों बाद मनींद्र ने अपने नाटक में सब जोड़ दिया था।

आज इतने दिनों बाद शांति को लगा कि इतनी जो मनमानी स्वतंत्रता दी है मनींद्र ने, देखकर भी अदेखा करना, समझकर भी नासमझ रहना, इसके पीछे एक सुकल्पित योजना है। मन में एक ऐसा चरित्र उपजा होगा मनींद्र के, केवल कल्पना की थोड़ी कसर थी। शांति को अपने मन के अनुसार चलने दिया था केवल अच्छी तरह समझने के लिए उस कसर को पूरा करने के लिए।

रियलिस्टिक आर्टिस्ट मनींद्र, मन हीन, चिंतक कलाकार, शांति उसके रसोद्रेक रसायन में गिनिपिग छोड़कर और कुछ भी नहीं।

अंत में एक दीर्घ निश्वास के साथ ही शांति की रुलायी मानो सूख गयी। तकिये से चेहरा उठाया धीरे-धीरे, सारे चेहरे पर आंसुओं के निशान, गाल में चिपके हुए हैं दो एक रुई के टुकड़े, दो एक बाल, सिंदूर की बिंदी बह-बह कर बिखर गयी है सारे माथे पर।

थोड़ी सी हंसी भी फूट पड़ी चेहरे पर। इतनी बड़ी गलती भी आदमी करता है। वह तो सोचे बैठी थी कि इंद्रजीत से ईर्ष्या करेगा मनींद्र। इतने वर्षों से मन को ठोकते बजाते मनींद्र का अपना मन पक्का हो गया है। इस तरफ बैठकर इंद्रजीत के साथ जब ताश या बाघबंदी खेलती थी शांति, मनींद्र, हो सकता है पर्दे के उस ओर से देख रहा था, पालतू एक बिल्ली को जैसे ढेर सारा प्यार कर रही है, मनींद्र का चेहरा ऐसे आश्रय भाव से प्रसन्न है।

शांति के हाथों का खिलौना इंद्रजीत, मनींद्र के हाथों का खिलौना शांति। गोल घूमती हुई खेल की बिसात।

शांति ने आंचल से अच्छी तरह रगड़-रगड़ कर मुंह पोंछा। बाल ठीक किये, साड़ी-वाड़ी ठीक करके फिर से लेट गयी शांति। इतनी आसानी से वह हार नहीं मानेगी। खेल तो एक बार में ही खत्म नहीं होता।

11

सारे दिन सब घूमती रहती हैं अपने-अपने धंधे से, शाम होते न होते एक-एक करके जमा होती हैं अड्डे पर, किनू ग्वाले की गली के सेवासदन में।

स्टोव पर पानी चढ़ाकर शकुंतला सामने बैठी है, और छोटे मोढ़े लेकर शकुंतला को घेरकर बैठी हैं लड़कियां, अणिमा, गीता, स्टेला। किसी-किसी दिन कालेज से लौटकर नीला भी जम जाती है।

पानी में चाय की पत्ती डालकर ढक्कन को अच्छी तरह ढककर शकुंतला कहती है, "क्या है तुम लोगों के पास, हिसाब दो सब एक-एक करके।"

"शकुंतला दी तुम तो काबुलीवाले जैसा कर रही हो। ठहरो जरा, चाय पीकर मैं तैयार हो जाऊं।"

अणिमा और गीता को मिला है आज पांच रुपया। स्टेला थोड़ा ज्यादा, दस रुपया।

बीस रुपया आंचल में बांधते-बांधते शकुंतला बोलती है, "शुरुआत कोई बुरी नहीं। लेकिन और भी चाहिए। रोज ही कोई बुलावा तो आने वाला नहीं है। मकान की भी मरम्मत कराना है। अखबार में एक विज्ञापन दे देना अच्छा होगा।"

"सब धीरे-धीरे होगा शकुंतला दी।"

होगा, वह शकुंतला जानती है। बहुत कुछ गवाने के बाद भी इतनी सी आशा तो थी इसीलिए तो आज शकुंतला इन कुछ लड़कियों को एक कर पायी है। बहुत कुछ बह जाने के बाद पैरों को नीचे आत्म निर्भरता का आश्वासन मिला है, कड़ी मिट्टी का। नर्सों के जीवन के महाव्रत का उल्लेख करते ही गदगद डाक्टर उपाध्याय जैसे लोगों से जो सम्मान, जो स्वीकृति, इन लड़कियों को नहीं मिली, इन लोगों को उसी जीवन को खोजकर देने का वादा किया है शकुंतला ने।

आंखों के सामने से जुलूस की तरह एक-एक कर चली जाती है अस्पताल की तस्वीरें। कम तनख्वाह, ज्यादा मेहनत। तेज दिमाग लिए रोगियों के बिस्तर के पास टहलना, लंबी बीमारियों वाले अपने सगे संबंधियों को छोड़ने वाले रोगी कितनी करुणा, दबे आग्रह से उन लोगों की ओर देखा करते थे। शायद आशा करते थे हल्के से ममत्व का स्पर्श, मिलती थी घुड़की। खुद भी धोखा खाती और

देतीं भी धोखा, चल रहा था कुछ खराब नहीं। डाक्टर उपाध्याय की अनुपस्थिति में बड़ी-बड़ी बातों के बुदबुदे उसी धोखों के आकाश उड़ते।

उससे तो यही अच्छा है। ये भी कोई बिना सूत की माला का व्यापार नहीं है। यहां भी रुपये पैसे का हिसाब रहता है। लेकिन अपना खाना अपनी रुचि के ही अनुसार है, पाने के साथ ही जुड़ा है उद्देश्य भी। ठगना भी नहीं ठगाना भी नहीं।

मुंह को जहां तक कम खोलकर जंहाई ली शकुंतला ने। सारी दुपहर सोने के बाद शरीर में मानो भारीपन आ गया हो। उसका नींद से उठा हुआ चेहरा ठीक बाघिनी के जैसा होता है, लड़कियां बोलती हैं। बाघिनी ? जैसे बहुत सी बाघिनी देखी हों तुम लोगों ने। काटा है सारा जीवन कलकत्ता शहर में, फुटपाथ से ट्राम, ट्राम से उतर कर फिर फुटपाथ।

चाय की चुस्की लेते-लेते शकुंतला ने कहा, "तुझे आने में आज इतनी देर हो गयी, मुझे तो डर लग रहा था गीता, बूढ़ा बालक छोड़ना नहीं चाह रहा था क्या?

"कहां शकुंतला दी। दवा खिलाकर कंबल ओढ़ाकर चली आ रही थी, बूढ़े ने बुलाकर कहा कि किताब पढ़कर सुनाओ ?"

"और तू वैसे ही सुनाने बैठ गयी ?"

"सुनाऊंगी नहीं रोज के हिसाब से पांच रुपया। मुझे छोड़कर बूढ़े को और किसी का विश्वास नहीं। लड़का, बहू, नाती, नतिनी किसी का नहीं। कहता है, अच्छा हो जाने पर मुझे लेकर तीर्थ यात्रा पर जायेगा।"

"क्या कहती है। एक बारगी ही उड़ जाने का मतलब है क्या ?"

"नहीं। बूढ़े का मन बहुत अच्छा है। मेरे लिए बूढ़ा ऊपर से पात्र भी खोज रहा है शकुंतला दी।"

"तुझे इतना नीचे गिरते हुए देखकर दुख होता है गीता। खुद तो किसी एक का जुगाड़ नहीं कर सकी, अंत में एक बूढ़े की शरण में जाना पड़ा, पंडित-नाई के लिए ?"

कंधे पर एक तौलिया डालकर नहाने चली गयी शकुंतला।

"जाऊं तैयार हो जाऊं। तुम लोग थोड़ा बैठो। मुझे तो अब रतजगा करना है।"

रात का काम शकुंतला खुद ही लेती है। कहती है, "रात में तुम लोगों को भेजने का साहस नहीं है। कच्ची उम्र है सबकी, लौटने नहीं दिया यदि तो ?"

असल में सब ये जानती हैं कि इतना करती हैं शकुंतला दी उत्तरदायित्व की भावना से। अभी भी बच्चियां हैं वे सारे दिन वे खटती हैं, दो पैसा घर में लाती हैं, यही एक रट है। क्या जरूरत उन लोगों पर रतजगे का बोझ लादने की। ये कोई सुहागरात तो है नहीं, केवल जागना भर है।

नहा आयी शकुंतला। अभी भी पानी लगा है पलकों पर, माथे के पास, कनपटियों पर दो बूंद पानी चमक रहा है, झुमके की तरह। सूखे हुए साबुन का फेन अभी तक लगा है गर्दन के पास, नाक के नीचे, ठोढी पर, गले पर।

केवल शमीज के ऊपर से, सूखी एक साड़ी कमर में एक बार लपेट कर चली आयी है शकुंतला, यह बाधाविहीन लड़कियों का राज्य है, यहां इतना शर्माने सकुचाने की आवश्यकता नहीं।

सूखे आंचल से चेहरा रगड़कर शकुंतला ने सभी की ओर देखा।

"क्या देख रही है, मुंह बाकर ?"

मुंह को आंचल से दबाकर हंसते-हंसते अणिका बोली—"तुमको। तुमको भी बाहर भेजने पर भरोसा नहीं होता है—शकुंतला दी। इस रूप का चवन्नी भर जो हम लोगों के पास होता…।"

"चवन्नी", साड़ी को चारों ओर से घेरकर दांत से पांड़ को पकड़कर ब्लाउज पहन रही थी शकुंतला, मुंह उस तरफ करके। गर्दन घुमाकर देखती हुई बोली। "चवन्नी क्यों, दो आना होने से भी पार लग जाती। लेकिन पूरा रुपया होने पर भी क्या सुख है री, देखती नहीं है खाली गोल मटोल होकर लुढ़क रही हूं।" किंचित रोमयुक्त, मजबूत बाहों को आगे कर बोली "ये सब देखकर कोई मेरे पास आने का साहस करेगा, सोचती है ? उम्र न हो, चर्बी को तो दूर से ही देखकर दंडवत करेगा।"

शकुंतला सज-धजकर बाहर निकल ही रही थी, ठीक उसी समय आयी ललिता। जब भी आती है इसी तरह बिना आवाज किये आती है, दरवाजे के बाहर खड़ी होकर, एक पैर पर भार देकर नोक से जूता उतारती है, पतले से काले दूसरे पैर का आभास सभी को हो जाता है, इतना सा जान लेने पर ललिता शर्म से सिर नहीं उठा सकती।

"जूता पहने ही कमरे में चली आ ललिता। ये किसी निष्ठावान विधवा का कमरा नहीं है जो जात चली जायेगी।"

ललिता और भी सकुचा जाती है, दुबले-सांवले गालों पर और थोड़ी लज्जा की छाप लग जाती है।

अणिमा कहती है, "लगता है भागकर आयी है, क्यों ललिता ?"

इस समय ललिता ने आंखे उठाकर देखा। "क्यों, मैं जैसे यों ही नहीं आती हूं ?"

लंबी सांस छोड़कर शकुंतला नकली उदासी की आवाज में बोलती हैं, "अब कहां आती है ललिता। अपने उस मेडिकल स्टूडेंट को पाकर अब कहां आती है। बड़ी जलन होती है। पता नहीं किस दिन उसके साथ कोई समझौता हो जाय। बोल ना, क्या देखकर तू भूल गयी ? वह क्या मुझसे भी ज्यादा सुंदर है ?" गर्दन टेढ़ी कर शकुंतला ने देखा।

नहाया हुआ चेहरा, लंबी भौंह, कसकर बांधे गये बाल। उस तरफ देखकर बात करने में ललिता की आवाज कांप गयी। रोना चेहरा बनाकर बोली, "क्यों शकुंतला दी, मैं तो आती हूं। फुर्सत मिलते ही चली आती हूं।"

"वही फुर्सत आजकल बहुत कम मिलती है ललिता। हमेशा के लिए आने के लिए कहा था, आज भी नहीं आयी। हम लोग सब सदर दरवाजे से झटपट निकल आये, और तू फिर से लौटकर खिड़की के पल्लों को धक्का दे रही है, कब दरवाजा खुलेगा इस उम्मीद में।"

शकुंतला का बिलकुल जाने का समय हो गया था, इसीलिए। नहीं तो और थोड़ी देर उसकी बातों की धार सहने पर ललिता रो पड़ती।

किसी बात का जब कोई उत्तर रहीं रहता, समूचे हृदय को टटोलने पर भी मिल नहीं पाती कोई कैफियत, रोना आता है उसी समय। मन-ही-मन ललिता भी तो जानती है कि जितने भी तीखे तेज क्यों न बोलें, सच ही कह रही हैं ये।

लेकिन इन लोगों के सामने जान निकल जाने पर भी ललिता स्वीकार नहीं कर पायेगी, आज भी अरविंद वही सिक्स्थ इयर का स्टूडेंट, आयेगा सोचकर बहुत देर तक इंतजार किया था, एक साथ सिनेमा जाने का भी निश्चित था। ठीक समय ठीक जगह पर एक-एक मिनट तक इंतजार किया है ललिता ने। डेढ़ घंटे से ज्यादा। इसके बाद सात बज जाने के बाद चली आयी यहां पर।

खिड़की के पल्लों को धक्का दे रही है। क्या पता शकुंतला दी ठीक कर रही है या नहीं। लेकिन एक अकेले सुंदर संसार की कल्पना ललिता अभी तक करती है,

थके हुए दिन के बाद वे निद्राविहीन रातें, रंगीन हो उठती हैं, इसमें संदेह नहीं। इन लोगों के सेवासत्र की परिकल्पना में उसने भी उत्साह से सहयोग दिया था। लेकिन लगता है धुन में आकर। असल में ललिता अस्पताल से निकल आने के लिए छटपटा उठी थी। अब और अच्छा नहीं लगता है रोगियों की अनवरत उदासी, टेंप्रेचर चार्ट लिखने को अब मन नहीं करता, इससे धोबी का हिसाब लिखने में ललिता को ज्यादा खुशी होती। मेजर ग्लास में दवा लेकर सूखे चेहरों के पास जाने से शाम को चीनी और नीबू का शर्बत एक मजबूत सुंदर हाथों में थमाना कहीं ज्यादा मधुर है।

ठीक उसी समय सदर दरवाजे का कड़ा खड़खड़ा उठा। शकुंतला ने खिड़की से उचककर नीचे देखा।

"ऐसे बेवक्त कौन आया है ? आज अब निकल नहीं पाऊंगी लगता है।"

नौकरानी ने दरवाजा खोल दिया था, एक जोड़ा जूता सीढ़ियों से चलकर एक-दो तल्ले तक चला आया था। खांसकर पूछा, "शकुंतला देवी हैं ?"

शकुंतला बोली, "देख आऊं अब कौन है। दाई, उनको आफिस में बैठने के लिए कह दो।"

सीढ़ी के ठीक सामने वाला कमरे का ही नाम आफिस है। बंद दरवाजे को धक्का देकर शकुंतला कमरे में चली आयी।

घुसते ही शकुंतला दो पैर पीछे हट आयी थी वह इस कमरे में किसी की भी नजर में नहीं पड़ा। सभी उत्सुक हो उठी हैं, उस कमरे की बातचीत का एकाध शब्द भी छिटककर आ जाये इस कमरे में।

सूखी आवाज में शकुंतला को बोलते सुना गया, "आप।"

भारी गले से उत्तर मिला, "मैं। लेकिन पहले तो तुम मुझे तुम बोलती थीं—न ? ठीक याद नहीं है। कुछ कम वर्ष तो गुजरे नहीं। बैठने को कहोगी या कुर्सी खींचकर खुद ही बैठूं ?"

"बैठिए।"

कुर्सी खींचने की आवाज सुनायी पड़ी।

"क्या जरूरत है वह झटपट बोलने के लिए मत कहना, यही अनुरोध है। एक सिगरेट जलाने दो, इधर-उधर, ताक-झांककर सब देखूं-सुनूं।"

"मेरा पता कहां से मिला ?"

फस करके माचिस जलाने का शब्द हुआ। "तीस वर्ष से ऊपर उम्र हुई तुम्हारी शकुंतला, अभी तक बच्चियों जैसा प्रश्न करती हो। मैं एक धाकड़ पत्रकार हूं, जानती नहीं। सारी दुनिया की खबर मेरी उंगलियों की नोक पर हैं—और कलकत्ता जैसे शहर में परिचित या खोये हुए एक आदमी का पता न लगा सकूंगा, मुझे इतना फालतू समझती हो क्या।"

"मैं तो खोयी नहीं। अपनी इच्छा से चली आयी थी।"

दांतों में जीभ छुआकर अफसोस जाहिर करते हुए एक शब्द बोलते हुए सुनायी पड़ा अतिथि का।

"जानता हूं, तुम खोयी नहीं थीं, खोया था मैं। तुम लेकिन खूब हट्टी-कट्टी हो गयी हो शकुंतला। तुम्हें देखकर ठीक-से फोटो नहीं—उतरी वाली लड़की की याद आना कठिन है।"

कड़ी आवाज में शकुंतला को बोलते सुना गया, "काम की बात कीजिए। उस कमरे में सब लड़कियां बैठी हैं।"

"लड़कियां ? ओ हो, अपनी उस आश्रम बालिकाओं की बात कह रही हो ? दुष्यंत के आने का वक्त हो गया लगता है। मुझे थोड़ा पहले से बता देना, ठीक समय पर चला जाऊंगा।"

"आपके जाने का समय हो गया है।"

जोर से सिगरेट का कश लेने का शब्द हुआ। आने वाले ने कहा, "भगा देने का खूब आसान रास्ता सोचा है। लेकिन तुम मुझे झूठ-मूठ ही शक्की नजर से देख रही हो शकुंतला। देखती नहीं, मैं बिलकुल बदल गया हूं। तुम्हें छूकर कह सकता हूं, एकदम ठीक हो गया हूं मैं। छाती अड़तीस, मैं अब एक स्वस्थ, बलवान नागरिक हूं। जानकर सुखी होगी शकुंतला, मैंने दुबारा विवाह किया था। एक लड़का भी हुआ था मेरा। आश्चर्य हो रहा है ?"

"आश्चर्य की क्या बात है।"

"हां। लड़का है मेरा, वह अंधा, विकलांग कुछ भी नहीं हुआ। सुनकर आश्चर्य नहीं हो रहा है ?"

"नहीं। लेकिन अब आप जाइये। मुझे भी देर हो रही है।"

"अभी भी देर ! कुल आठ ही तो बजा है। तुम लोगों की रात लगता है इतनी ही जल्दी शुरू हो जाती है शकुंतला ? रहने दो अब गुस्सा मत करो। काम से ही

आया हूं। दरवाजा अच्छी तरह से बंद कर दो।"

और कुछ सुनायी नहीं पड़ा। लगभग मिनट पांचेक बाद सीढ़ियों से एक जोड़ा जूता उतरने की आवाज सुनायी पड़ी। तब तक भी कमरे का दरवाजा बंद था। शकुंतला का पता नहीं।

हल्के-हल्के दरवाजा खोलकर भीतर देखा लड़कियों ने। पैर दबा-दबाकर आगे बढ़ीं। टेबल पर दोनों हाथों के बीच चेहरा छुपाकर बैठी है शकुंतला। उन लोगों की आहट से सिर उठाया। कांपती पलकों के नीचे थरथराती हुई आंखें, थोड़ी लालिमा युक्त।

धीरे-धीरे उठकर खड़ी होकर शकुंतला ने बाल ठीक कर लिए। सूखी-सी आवाज में बोली, "बहुत देर हो गयी। कल से एक नेपाली दरबान को रखना होगा, लगता है।"

और कुछ भी नहीं कहा शकुंतला ने, कई जोड़ी आंखों में अटके कौतूहल का उत्तर नहीं दिया। बाहर से दरवाजा उड़का कर उतर गयी।

दूसरे दिन दुपहर में क्लास नहीं थी। खाने के बाद नीला छत पर बाल सुखा रही थी। अचानक देखा कि उस मकान की खिड़की से शकुंतला उसे बुला रही है।

"क्या कर रही हैं ? आइये न थोड़ी गप-शप करें।"

लड़कियां सब अपने-अपने काम पर चली गयी हैं। शकुंतला का नहाना-धोना हो गया है। आंख मुंह में रात्रि जागरण की कोई थकान नहीं, न कल शाम की कोई ग्लानि का चिन्ह तक। सिर पर दो बाल्टी पानी डालते ही जैसे सब धुल गया हो। चेहरे का भाव फिर से सरल हो उठा है, थोड़ी चपटी नाक के दोनों तरफ की दोनों आंखें फिर से हंस उठी हैं।

तकिये पर सिर रख शकुंतला ने बदन को मानो और भी लंबा कर दिया है आलस से। पान भी खाया है शायद। धीमी आवाज में नीला से पूछा, "कल शाम आपको खूब आश्चर्य हुआ होगा न ?"

नीला कुछ सकुचाती हुई देखती रही, कुछ बोली नहीं।

"पूछेंगी नहीं कुछ ?" आज एकदम स्वच्छंद शकुंतला, सब बातें स्पष्ट बताने के लिए मानो सोचे बैठी है।

"कौन आया था कल ?" दुविधा ग्रस्त आवाज में अनजाने ही पूछना पड़ा।

"पहचानती नहीं ? बनमाली सरकार आजकल डाक साइट में एक संवाद-

दाता है, इसको पहचानती नहीं ? खुश होने पर अखबारों में सेवासदन की प्रशस्ति छप जाय इसी वक्त," और थोड़ा रुककर शकुंतला ने कहा, "और नाराज होने पर गंदगी का ढोल भी पीट सकते हैं।"

"मेरे साथ क्या संबंध है सोचकर आश्चर्य हो रहा है ? नहीं, नहीं, जो सोच रही हैं वह सब नहीं। प्रेमी, ट्रेमी नहीं। मेरे पति थे।"

"आपके पति।"

जितनी चंचलता हो सकती है आवाज में भरकर शकुंतला ने कहा, "क्यों, नर्सगीरी करती हूं, ये कहकर हम लोगों के पति नहीं हो सकते हैं क्या। सुनिये तब, इसी बनमाली सरकार के साथ मेरा एक दिन यथा रीति मंत्र पढ़कर अग्नि को साक्षी मानकर विवाह हुआ था। उसके साथ मैंने छह महीने ग्रहस्थी भी बसायी है। और भी सुनियेगा ? स्टोव पर चाय का पानी चढ़ा दीजिये जरा। मेरा तो आज उठने को मन नहीं कर रहा है।"

लेटे-लेटे बायें पैर के अंगूठे से दायें पैर के तलुए को घिसते-घिसते शकुंतला बोली।

12

उस दिन धीरे-धीरे अपनी कहानी सुनायी थी शकुंतला। एक-एक मूंगफली तोड़कर खाने जैसे, बदन के छिपे हुए घावों को दिखने जैसे। घाव कहां है अब, सूख गये हैं, दाग तक आंखों से दिखायी नहीं देता।

चित्त लेटे हुए चाय के प्याले से हल्के-हल्के चुस्की ले रही है शकुंतला, खुले बालों का ढेर पीठ से हटकर पूरे तकिये पर बिखरा है, उसकी छाया में उसकी आंखें नीला को लगी थीं—जैसी अस्पष्ट, धुंधली।

"मेरा भी ब्याह हुआ था," कहा शकुंतला ने, "उसी बनमाली सरकार के साथ। उसके बाद की बात सुनिए अब।"

"ब्याह हुआ, लेकिन आदमी पसंद नहीं आया। कभी भी नहीं आया, मेरे ब्याह

के पहले से ही मेरी मां के घर आता-जाता था। मेरी मां थी मिडवाइफ। हम लोग हैं दो पुरुषों की धात्री।

"वह फूला चेहरा, कर्कश आवाज, हल्का मजाक सब मिलाकर ये आदमी कितनी नीच, मोटी बुद्धि का लगता था। फिर भी आपत्ति नहीं की। दाई की लड़की से इतने कम रुपयों में विवाह के लिए कोई तैयार नहीं होता।

"ब्याह भी किया, और पति को प्यार करने के लिए भी तैयारी की। बंगाली लड़की, पति अच्छा न लगने पर भी प्रेम करना जानती है। और भाई, आपको छूकर कहती हूं जरूरत भी हो रही थी। बीस की उम्र पार हो गयी थी, स्वास्थ्य मेरा शुरू से ही अच्छा था, सोलह से इक्कीस वर्ष तक काट दिये थे किसी तरह दबी हुई अंदरूनी तकलीफ के साथ, और नहीं सहन कर पा रही थी। सोचा, ब्याह होने से मन नहीं बचे शरीर तो बचेगा। दोनों को एक साथ यदि बचाकर नहीं रखा जा सकता, तो न जाये।

"आपका ब्याह नहीं हुआ, सब बातें समझ नहीं पायेंगी। फिर भी इशारे से कहती हूं कि आशा पूरी नहीं हुई। दोनों ओर से ही ठगी गयी, न मन भरा न शरीर ही सुखी हुआ।"

"क्यों ?" धुंधली किंचित लाल आंखों से शकुंतला उसे देख रही है, नीला ने मोहाविष्ट भाव से पूछा, "क्यों ?"

"क्यों ?" नीला के प्रश्न को दुहराया शकुंतला ने, थोड़ी हंसी, "ब्याह के बाद पहले कुछ दिनों तक तो उसने जानने नहीं दिया। नाना प्रकार के बहाने करता। उसके बाद एक दिन—एक सप्ताह जाते न जाते सब जान गयी। मेरे पति को कोढ़ था। दाई की लड़कियां हैं न हम, जल्दी से समझ लेती हैं। स्वीकार किया, बिना छिपाये। मेस में रहते हुए बत्तीस वर्ष हो गये थे, फिर भी शादी करने की सामर्थ्य नहीं हुई, उसको भी दोष दूं तो कैसे। ज्यादा नहीं, एक दिन, दो दिन या तीन दिन, वही यथेष्ट है। क्षण मात्र का स्वर्ग खरीदा है अनंत रोगों के नरक के बदले।

"चकित भाव को खत्म होने में देर नहीं लगती। रोने को सुखा दिया मन के संताप से। कड़े स्वर में उससे पूछा था याद है, 'तब मेरा ये सर्वनाश किसलिए किया।' सिर झुकाकर बैठा था। कहा, 'क्या करूं, लोभ नहीं संभाल सका। अब ग्लानि हो रही है'।"

"ग्लानि शब्द से ही हंसी आ गयी। उसमें कोई शास्त्रीय पश्चाताप हो तो हो, लेकिन क्षतिपूर्ति नहीं होती है।"

"उसके बाद ?" नीला ने पूछा।

तकिये को अच्छी तरह कोहनी के नीचे खींच लिया शकुंतला ने, कुछ देर तक दोनों हाथों से चेहरा ढके रही। टूटी आवाज में बोली, "सब कहूंगी। असली परीक्षा शुरू हुई उसके बाद। एक साथ रहना नहीं हो सका। अलग बिस्तर हुआ। अंत में अलग कमरा लेकिन अलग कमरे के बीच भी तो छिटकनी रहती हैं। शर्म की बात क्या कहूंगी भाई, मैं उस पर ही केवल अविश्वास करती थी ऐसा नहीं, खुद पर भी नहीं। कितनी मर्मांतक शारीरिक ज्वाला में और दो सप्ताह बीते थे आपको समझा नहीं सकूंगी। अलग कमरे में लंबी रातों के अकेलेपन ने, जैसे आग के समान जलाया हो। आंखों में आग, जीभ में आग, होंठ, छाती में। नल पर जाकर पानी डाला है, फिर भी बुझी नहीं। अंत में एक दिन छिटकनी भी खोल दी थी।"

"खोली थीं ?"

"हां, उसके बाद से, अखबार में काम करते थे वे, हमेशा के लिए नाइट ड्यूटी ले ली। कहा, 'यही अच्छा है। तुम्हारे शरीर में ये रोग मैं लगाना नहीं चाहता।' मैंने भी कहा 'वही ठीक है। अंधी, विकलांग संतान को देख नहीं पाऊंगी।' लेकिन ये तो भाई पीछे हटना हुआ, समस्या का समाधान तो नहीं हुआ। और भी लगभग महीना-भर बीत गया। रोज रात में नौ बजते ही वे निकल जाते, और मैं दरवाजे में सांकल लगा अकेली रहती। अंत में एक दिन खुद ही सब खत्म कर दिया, झूठा, धिक्कार है स्त्री जीवन को। वह मकान छोड़ आयी। मांग से पोंछ दिया सिंदूर का निशान। अस्पताल में नौकरी की।"

फिर से तकिये पर चेहरा रखकर बहुत देर तक बैठी रही शकुंतला। उसके बाद खड़ी होकर बालों को इकट्ठा बांधते-बांधते बोली, "आज इतने दिन बाद वे आये थे। ठीक हो गये हैं। दुबारा ब्याह किया है, सुंदर स्वस्थ लड़का भी हुआ है ऐसा सुना है। समाज में उसका उचित स्थान है—वही बहू मर गयी है। कह गया है कि मुझे फिर से ले जाना चाहता है। कहिये तो जाऊं कि नहीं।"

"क्या पता, जो उचित समझियेगा करियेगा।"

"पागल हुई हैं आप। अब क्या लौटा जा सकता है। अस्पताल के काम में

आदमी मैंने कम नहीं देखे हैं, सज्जन, मतलबी, प्रौढ़, शर्मीले युवक। जीवन को देखा है बहुत दिनों से। बहुत से आघात, बहुत से प्रलोभन। अब मुझे कुछ भी मोह नहीं है। इतने रुग्ण जीवन देखे हैं तभी तो इसके समाप्त होते ही एक स्वरूप एवं बलवान जीवन की भी कल्पना कर सकी हूं। शरीर सोता रहा है। लेकिन मन को जगाये रखा है साहस के साथ। इसके बाद इन कुछ लड़कियों के साथ बनाया है—'सेवासत्र'। ये लोग मेरी आस लगाये बैठी हैं। अब इन लोगों को छोड़कर, सब नष्ट कर, चूल्हा-चौका संभालने पर लोग हंसेंगे कि नहीं।

सिर ऊपर उठाकर देख रहा था इंद्रजीत, नीला की आहट सुनकर बोला, "आइये।" हंसने की चेष्टा करते हुए बोला, "बस आइये ही कह सकता हूं। बैठिये बोलने के लिए कोई अतिरिक्त सामान इस घर में नहीं है।"

"क्या कर रहे थे लेटे-लेटे।"

"कड़ियां गिन रहा था। पुराने मकानों में ये एक बड़ी सुविधा होती है नीला देवी, कड़ियां होती हैं, जिन्हें गिना जा सकता है। नये मकानों में नहीं होती हैं, उदास होने पर मन बहलाने के साधन से उनमें रहने वाले वंचित रहते हैं।"

"अब तो आपकी तबीयत ठीक हो गयी है," नीला ने सिरहाने की खिड़की खोलकर कहा, "थोड़ा बहुत घूम फिर आ सकते हैं। देखिए तो बाहर कितनी अच्छी धूप है।"

लंबी-लंबी उंगलियों से बढ़े हुए बिखरे बालों को पीछे कर—इंद्रजीत दीवाल से पीठ टिकाकर बैठ गया।

थकी आवाज में बोला, "जाऊंगा तो। लेकिन कहां, किसके पास।" तख्त के एक किनारे की ओर इशारा करते हुए बोला, "बैठिए न यहां। लेकिन अच्छा हुआ जो आप आ गयीं। बातें करने के लिए कोई मिला तो।"

अचानक क्या मन में आया नीला के, पूछ बैठी, "शांति दी नहीं आतीं ?"

"कहां आती हैं अब। पतली-सी ठोढ़ी पर हाथ फिराते हुए खुरदुरा पन जैसा लगा इंद्रजीत को।"

"आती भी हैं तो चली जाती हैं। फिर भी दोनों वक्त ठीक समय पर खाना मिला जाता है, यही बहुत है।" बुद्धु की तरह हंसता हुआ बोला, "बैठने के लिए कहने का भी साहस नहीं है अब। हो सकता है सुनना पड़े कि सिरदर्द हो रहा है या काम है। बता सकती हैं कि कौन ऐसा काम आ पड़ा है शांति भाभी को।"

नीला ने कहा जरूर कि 'क्या पता,' लेकिन कुछ न कुछ जरूर जानती है। मनींद्र के पहले नाटक की तीस रातें पूरी हो गयी हैं, दूसरा नाटक भी समाप्त प्राय है। आजकल मनींद्र बाहर ही बाहर रहता है अधिकतर शांति भी घूमती रहती है बाहर। इंद्रजीत से जब हुआ नहीं, तब मनींद्र को वश में करने का दूसरा रास्ता शांति शायद रास्ते-रास्ते खोजती रहती है।

कुछ दिन पहले की बात होती तो नीला शांति से शायद पूछ सकती थी। आजकल उन दोनों के बीच कहीं कुछ टूट गया है। नीला से जैसा बचना चाहती है शांति, मिलने पर कम हंसती है, बात करती है और भी कम।

"खाना अभी तो मिल रहा है," इंद्रजीत कहता गया, "जरूर, कितने दिन और मिलेगा, कह नहीं सकता। इस महीने का रुपया अभी तक नहीं आया है घर से, जानती तो हैं, मैं अभी तक पराश्रित हूं। इधर डाक्टर कहता है दवा खाने, एक टानिक, कहां से लाऊं इतना रुपया। फटे जूते के विषय में नहीं सोचूं तो चल सकता है।"

"वह सब अभी मत सोचिए," नीला ने समझाया, "बल्कि, जब तक पूरी तरह ठीक नहीं हो जाते, तब तक किताब वगैरह पढ़कर निकाल लीजिए।"

"कहां है किताब" हताश होते हुए इंद्रजीत ने कहा, "और खरीदने के लिए रुपया भी कहां है।"

आंचल के नीचे से इसी बीच किताब निकाली नीला ने, चमचमाता हुआ नया कवर, परिष्कृत अक्षरों में छपा एक नवीनतम काव्य संकलन।

"देखें, देखें," उत्सुकतावश लगभग छीन लेने की कोशिश की इंद्रजीत ने। पता नहीं कैसी दुष्टता नीला के मन में आयी उत्सुकता बढ़ते देख किताब आंचल में छिपाना चाहा। इंद्रजीत कब तक लपक कर जैसे उसके बदन पर आ गिरा, कमजोर शरीर, संभाल न सका शायद। दूसरे ही क्षण जब उठ बैठे दोनों, नीला का आंचल इंद्रजीत की मुट्ठी में, जूड़ा खुलकर बिखर गया, बिस्तर के ऊपर किताब अधखुली।

पन्ना पलटते ही और भी विस्मृत हो गया इंद्रजीत, "आपकी किताब ? कविता की किताब आपने खरीदी है ? आप कविता पढ़ती हैं ?"

नीला तब भी थोड़ा हांफ रही थी। सांस से ऊपर नीचे उठती छाती, आंखों की पुतली की भंगिमा विचित्र, अनुराग से आपूरित। एक हाथ बढ़ाकर कृत्रिम रोष से बोली, "देखिए, क्या हाल बनाया है मेरा। हाथ टूट गया।"

तब किताब खोलकर आंखों के सामने रख ली है, इंद्रजीत ने, किसका हाथ टूट गया है नजर उठाकर भी नहीं देखा।

धीरे-धीरे हाथ खींच लिया नीला ने। बोली, "मैंने ही खरीदी है किताब। मैं कविता नहीं समझ सकती यही समझते हैं न ?" इसके बाद इंद्रजीत को चौंकाने के ख्याल से किताब छीनकर एक कविता भी धीरे-धीरे पढ़कर सुनायी। किताब मोड़कर धीमी आवाज में बोली, "लगता है, आप लोगों को, इस युग के कवियों को समझ पा रही हूं धीरे-धीरे।"

प्रत्युत्तर में इंद्रजीत ने भी एक कविता पढ़कर सुनायी। ऐसे ही समय बीत गया, एक कविता, दो बातें, दो बातें एक कविता का पुल बनाते हुए वे पहुंच गये शाम की अंतिम सीमा तक। थोड़ा-थोड़ा करके चटाई समेटने की तरह बची हुई धूप तक।

उस दिन इंद्रजीत ने उसका स्पर्श किया था, जलते हुए माथे पर रखा हाथ दबाकर पूछा, "कितना बुखार है," आज भी वैसी ही एक उतप्त अनुभूति के लिए मन ही मन जैसे आतुर हो उठी हो नीला। थोड़ी देर पहले ही तो छीना झपटी हुई थी, वही अनायास छुआ-छुई जैसे हल्के से एक आवरण की तरह जकड़ी हुई हो बदन पर, चेतना पर। क्षण मात्र का समय, तब भी जैसे पूरा शरीर सितार के तारों की तरह झंकृत हो उठा हो, समूचा मन एक गीत बन गया हो।

अचानक किताब बंद कर इंद्रजीत ने कहा, "अब पढ़ना अच्छा नहीं लग रहा रहा है। आइए बल्कि—"

कान खड़े हो गये नीला के, इंद्रजीत क्या बोलेगा ये अनुमान कर सुनने के लिए खिसक कर भी बैठ गयी।

"चलिए थोड़ा ताश खेलें, नहीं तो बाघबंदी।"

नीला उठकर खड़ी हो गयी। सूखी आवाज में बोली, "मैं तो ताश खेलना जानती नहीं।"

"बाघबंदी ?"

"वह भी नहीं। अच्छा होगा आप सो जायें। कमजोर शरीर फिर बीमारी बढ़ जायेगी।"

कमरे में लौटने पर भी उसकी उत्तेजना गयी नहीं, किसको कहेगी इस लज्जा की बात को। किसके सामने स्वीकार करेगी, कुछ दिनों का सोचा विचारा व्यर्थ

हो गया है। खुद को इंद्रजीत के मन से जोड़ने की दुराशा में साहित्य लेकर इधर कुछ दिनों से—डूबी हुई थी नीला। अच्छी नहीं लगती, फिर भी आधुनिक कविता पढ़ी, कालेज लाइब्रेरी से किताब लेकर केवल कविता पाठ किया है। जिन रुपयों से कोर्स की किताब खरीदना था, उन्हीं रुपयों से खरीदा है संकलन। निर्लज्ज दिल बहलाव। इंद्रजीत को मुग्ध करेगी, हरायेगी इसी निश्चय में।

कैसी बेवकूफी है, कैसी बेवकूफी। आज तो गयी थी, बड़ी बढ़चढ़ कर प्रसंशा करने। बड़े जोर शोर से आलोचना भी की थी। किसे पता कि उसके साथ बैठ जब बड़ी-बड़ी बातें कर रहा था इंद्रजीत, तब मन ही मन वह लालायित हो उठा था और एक औरत के सामीप्य के लिए जो बाघबंदी खेलती, लेकिन बंदिनी नहीं होती, कविता से जिसे जरा-सा भी सरोकार नहीं है। कविता क्या है इस विषय में बड़े-बड़े आलोचकों के वजनदार विचारों, तर्कों को जो वह तुरंत पढ़कर आयी थी, जब उदाहरण दे रही थी नीला, मन ही मन तब इंद्रजीत हंस रहा था कि नहीं ये कौन बतायेगा।

तब भी पराजय स्वीकार नहीं करना चाहती नीला। इंद्रजीत को कितना अभाव है वह जानती है। ये सब मनोविकार पैदा होते हैं गरीबी से। अच्छी तरह खा-पहन नहीं सकता है वह। किस टानिक का नाम लिया था। नीला ने सोचा कि वह टानिक कम से कम इंद्रजीत को खरीद कर देना होगा। शांति के नशे से उसे बचाना होगा।

नशे की बात पर हंसी आ गयी नीला को। इंद्रजीत को लेकर उसे खुद नशा हो गया है तो गलत क्या। निद्राविहीन आंखों के कोने में जमी हुई लालिमा की तरह। पापुलर पार्क की याद आ गयी। सौम्य, मनन। किंतु मोम की तरह उनकी याद को अर्थ में डुबोकर रखने से क्या फायदा। जो खत्म हो गया उसे खत्म होने दो। तन तो रहे वर्तमान में और मन रहे अतीत की बहती हुई गहरी धारा में, इस विडंबना को समाप्त होने दो।

शांति, शांति। जितनी बार भी नाम लिया नीला ने उतनी बार घृणा की गागर छलक पड़ी मन में। वह तो जानती है कि शांति क्या है। इंद्रजीत को नहीं मालूम, उसकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखेगी शांति। मनींद्र को वश में करने की लालसा में घूम रही है दूसरी दुनिया में नाटक में सक्सेसफुल हुआ मनींद्र, शांति होना चाहती है फिल्म में। किसी ने शायद आश्वासन भी दिया है शांति को, चित्र-

तारिका बना देने का। अधिक यश, उससे भी अधिक पैसा। आजकल जिनके साथ घूम फिर रही है शांति, उन दो एक लोगों को भी नीला ने देखा है कालेज आते-जाते।

इस बार वह दुबला पतला कवि नहीं है। शक्ति सामर्थ्य से युक्त मध्यमवयसी हैं सब, तेज धार के समान क्रीज वाली फुल पैंट, कड़कदार स्त्री का हुई शर्ट, और काली मां की जीभ के समान लपलपाती टाई। किसी समय तितली मार्का 'बो'। मनींद्र के साथ बराबरी से होड़ कर रही है शांति।

इसी शांति के हाथों से उद्धार करना चाहती है इंद्रजीत का। लेकिन शांति जैसे सर्वनाश करके नहीं, कल्याण करके। दवा-दारू, प्रेम जताकर।

दूसरे दिन शतरंज की बिसात उठाकर प्रमथ पोद्दार नीचे उतरा। नीला ने पीछे से पुकारा, "सुनिए।"

इधर-उधर देखकर नीला ने उसके हाथ में एक अंगूठी रख दी। उत्तेजित तेज स्वर में बोली—"इसे रखकर रुपया देना होगा मुझे। कुछ जरूरत आ गयी है। कर सकेंगे तो।"

हाथ बढ़ाकर अंगूठी ले ली प्रमथ ने "कर सकूंगा। अभी तो रुपया नहीं है। कालेज जाते वक्त रुपया ले लेना, क्यों?"

"ठीक है।" नीला तैयार हो गयी, "और एक बात। मेरे बाबूजी से इस विषय में कुछ कहिएगा नहीं, यही विनती है।"

"अच्छा।" गर्दन हिलाकर रास्तेपर उतर आया प्रमथ। अंगूठी को होशियारी से रखने लगा। हंसा मन ही मन, ये फिर वापस आ गयी उसके पास। बार-बार जाती है, बार-बार आती है, बिना कहे ही अर्थ पूर्ण भाषा में बहुत-सी गुप्त कहानियां कहती है पोद्दार के कान में। कीनू ग्वाले की गली में जो रागरंग हो रहा है कोई खराब नहीं है।

13

छोटी सी बात के कारण ही अविनाश को अपमानित किया नीला ने, जरा-सी बात के चलते ही उसके दस-पंद्रह दिन बाद भाई भाभी इस मकान को छोड़कर चले गये।

कीनू ग्वाले की गली में चौकाने वाली कोई घटना नहीं घटती, केवल छिट-पुट बातों को छोड़कर थोड़ी सी फुसफुसाहट, थोड़ी सी जबान दराजी।

बाद में जरूर नीला ने सोचा कि उस दिन शांति दी के दरवाजे के सामने अविनाश को चोर की तरह खड़ा देखकर दिमाग खो बैठना अच्छा नहीं हुआ। अविनाश को वह समझ न पायी हो ऐसा नहीं। अविनाश ने अविनाशोचित काम ही किया था। पालतू कुत्ता भी कभी-कभार डस्टबिन सूंघता है, इसलिए बीच-बीच में सांकल खोलकर रखना ही होगा।

लेकिन अविनाश यदि नीला को देखकर ठिठक कर खड़े न हो जाते, नहीं देखते पकड़ी गयी चोरी की कबूलती आंखों से, तब शायद नीला खुद को संभाल पाती। लेकिन नीला से आमना-सामना होने पर भद्र पुरुष इतना सकपकाये क्यों।

"कहां गये थे ?"

"ये···ये बस ऊपर, तुम्हारे यहां। सुना तुम नहीं हो, इसीलिए फिर···।"

"इसीलिए फिर शांति दी के दरवाजे को खटखटाने आये हैं लाठी से ?" पहले तो अविनाश के मुंह की बात छीनकर मजाक करती हुई बोलना शुरू किया, इसके बाद अचानक धैर्य खोकर बोल बैठी, "लेकिन आप इतना झूठ क्यों बोल रहे हैं, ऐसी आदत क्यों है आपकी। मैंने साफ देखा कि आप उस कमरे से निकल रहे हैं।"

नीला की आवाज जितनी ऊंची, अविनाश उतने ही धीरे बोलते। "तुम गलत समझ रही हो। लड़की सिनेमा में आना चाहती है, फिर मेरी बहुत से स्टूडिओ में जान-पहचान है, इसीलिए—।"

"सुनिए चाचाजी", नीला ने अपने होशो-हवास में अविनाश को ये पहली बार पारिवारिक संबोधन किया," उस सब सफाई की जरूरत नहीं है। आपको पहचानना बाकी नहीं रहा, इस मकान में अब आप नहीं आइयेगा।"

निरुपाय सी अवस्था में गाल पर हाथ फिराते रहे अविनाश। कहां चाल में भूल हो गयी है। नहीं, होशियारी से कदम फूंक-फूंक कर ही तो आगे बढ़ रहे थे। कवि-

राज के परामर्श से शक्तिवर्धक सालसा लेना शुरू किया है। सुबह में निर्धारित एक मुर्गी के अंडे की मात्रा बढ़ाकर चार कर दिये हैं। फिर भी···

लकड़ी टेकते-टेकते बाहर निकल आये अविनाश। गाड़ी है गली के बाहर।

कटुता की यही शुरुआत थी। भाई ने मकान छोड़ा इसके पंद्रह दिनों बाद।

जरा-सी बात पर, बल्कि बिना किसी बात के ही भाभी से झगड़ा हुआ। बहुत देर तक सोने के बाद दरवाजा खोला था अमिता ने। खुद ही कोलज जाने के लिए खाना बनाने को चूल्हा-चौकी लेकर नीला बैठी थी।

रूमाल में फच-फच करके कई बार नाक साफ करके अमिता ने कहा था, "मुझे एक कप चाय पिलाओगी, ओह भाई ननद जी।"

"चूल्हा खाली नहीं है। कालेज को देरी हुई जा रही है।" सूखी, कठोर आवाज में उत्तर दिया था नीला ने।

सुनकर अमिता का चेहरा उतर गया। खुद ही कहीं से अखबार का कागज जुटाती है सोने के कमरे में। इसके बाद उसी से आग जलाकर शायद पानी गरम करने गयी है।

आग जलाने में पता नहीं कैसे क्या हुआ, दायें हाथ में एक छाला पड़ गया बहू के। उसी समय से अमिता ने वहीं जमीन पर लेटे-लेटे बड़बड़ाना शुरू किया। कागज से जली हुई राख उड़-उड़कर साड़ी में चिपक गयी। बिखरी हुई केशराशि में, दुख से सिकुड़े माथे पर। रह-रहकर कतरनी को चैन नहीं है।

वैसे ही सुबह से चूल्हा झोंक रही थी, ये सब देखकर नीला से और रहा नहीं गया। अमिता के कमरे की चौखट पर खड़ी होकर तेज आवाज में बोली, "अच्छा भाभी, तुम क्या हो जी। एक कप चाय का पानी तक गरम न कर सकतीं। या जानती हो, फिर भी अपनी मर्जी से एक तमाशा कर बैठती हो, अपना अनाड़ीपन जाहिर करती हो। अमीर चाचा की भतीजी, गरीब घर में चली आयी, हम लोगों की आंखें खुलवाकर दिखा देना चाहती हो कि छोटा काम करने की आदत नहीं है, मक्खन शरीर है तुम्हारा ?"

पल भर के लिए अमिता का चेहरा उतर गया था, तुरंत बाद उठकर सीधे बैठ गयी थी। थोड़ी देर बाद कुछ न कहकर दरवाजे में लगा दी थी सांकल।

सारी दुपहर कुछ खाया नहीं बहू ने। दरवाजे के बाहर खड़ी होकर मां ने विनती की, बहू सरकी नहीं, खोली नहीं बंद कमरे की सांकल।

मां ने आकर नीला से कहा—"तू माफी मांग नीला।"

क्षण मात्र में ही नीला की आंखे गुस्से से जल उठीं, "माफी मांगूगी ? क्या किया है मैंने ?"

"क्या किया है क्या नहीं किया है, ये नहीं जानती। गृहस्थ घर की बहू, सारी दुपहर बिना खाये रहेगी, इससे अशुभ नहीं होगा ?"

"शुभ ही तुम्हारे घर में कितना है मां ?" झुंझला कर उत्तर तो दिया नीला ने लेकिन उसे उठना पड़ा। बंद दरवाजे के सामने खड़ी होकर नीला ने कहा, "मैंने गलत कहा है भाभी।"

उत्तर नहीं मिला। नीला ने फिर से अपनी बात दोहराई। इस बार आंसुओं से भरी आवाज में सुनायी पड़ा, "कुछ गलत नहीं कहा भाई, तुम्हारे मन में जो आया वही कहा। अपनी इच्छा से करने पर किसी का क्या आता जाता है।"

"खाने चलो।"

"माफ करो भाई। मन नहीं है। तबीयत भी ठीक नहीं है।"

इस बार मां ने आगे बढ़कर कहा "उसे तुम माफ कर दो बहू।" बच्ची है, क्या बोलते क्या बोल गयी···।"

इतनी जो रुचि संपन्न लड़की है अमिता, पलभर में ही सारी शालीनता बोध घुट गया। विकृत, क्रुद्ध आवाज में बोली, "बच्ची है। वह पांच लोगों के साथ मटरगश्ती नहीं करती ? ब्याह कर देने पर वह तीन बच्चों की मां हो जाती, जानती हैं ?"

इतने बड़े अपमान पर भी मां ने कुछ नहीं सोचा। ऊपर से और दो एक बार अनुनय विनय की बहू से।

शाम को देवव्रत ने आकर सब सुना। अमिता ने उससे क्या कहा, क्या पता। देखा कि देवव्रत आफिस से आकर कपड़े बिना बदले ही बाहर निकल गया।

"कहां जा रहा है, देवू।"

"गाड़ी बुला लाऊं, मां। उसे मैके पहुंचा आऊं।"

"मैके पहुंचा आयेगा ? हम लोगों की बात एक बार भी नहीं सुनेगा ?"

"सुनने लायक तो कुछ नहीं है मां," देवव्रत ने गंभीर मुद्रा में कहा, "इस घर में वह ठीक से निभ नहीं पा रही है, इसमें तो कोई संदेह नहीं। रोज-रोज झगड़ा लड़ाई होता है केवल, इससे उसे छोड़ आऊं, यही बेहतर है।"

"बहू की बात सुनकर तू···" मां कुछ बोलने जा रही थीं, लेकिन देवव्रत तबतक चला गया था। मां अवाक् हो गयी। गाड़ी आयी। जाते समय मां के पैर छुये शायद अमिता ने। बाबूजी घर में नहीं थे।

किसी के भी मुंह से एक शब्द नहीं निकला। सब कुछ जैसे मूकाभिनय हो रहा हो।

कालीघाट है ही कितनी दूर। भाई की बातों से लगा था कि वह भाभी को छोड़कर चला आयेगा। शाम हो गयी बाबूजी लौट आये। रात हुई। आठ, नौ, दस, देवव्रत तब भी नहीं लौटा। मां भैया का खाना ढक कर चुपचाप बैठी है। बड़े रास्ते पर अंतिम ट्राम भी घंटी बजाती हुई लौट गयी। देवव्रत का पता नहीं। मां निद्राहीन आंखों से बैठी हैं। गली में किसी के भी कदमों की आहट पर चौकन्नी हो बैठती हैं।

नीला ने एक बार ऊबकर कहा, "झूठमूठ को तुम बैठी हो मां। भैया अब नहीं आयेंगे समझती नहीं ?"

"अब नहीं आयेगा ?" मां भरे, सूखे चेहरे से अस्फुट आवाज में दुहरा भर सकीं।

उत्तेजित, जल्दी जल्दी नीला बोल गयी, "एक बहाना भर तो वे खोज रहे थे। ये गरीबी उन्हें सहन नहीं हो रही थी। भागकर बच गये। इतनी उम्र हुई तुम्हारी और जरा-सी बात नहीं समझ पा रही हो ?"

दूसरे दिन सुबह मां ने बाबूजी से कहा, "देवू कल रात में भी नहीं लौटा।"

पिछले दिन रेस में बहुत हार आये हैं बाबूजी। शतरंज की बिसात बिछा कर बेठे थे प्रमथ के इंतजार में। चाल ठीक कर रहे थे, "मैं जानता था कि वह चला जायेगा।"

"आखिरी दिनों में कितनी कुछ देवव्रत की आय से ही गृहस्थी चलती थी।" मां ने कहा, "क्या होगा अब।"

"कुछ नहीं होगा, सब ठीक हो जायेगा।" बिसात से चेहरा उठाकर बाबूजी अद्भुत आंखों से हंसे, "एक पैदल या एक हाथी मर गया है। मात अभी नहीं हुई है।"

धुंधली और मैली छाया से नीला इंद्रजीत को खींच लायी बाहर। पार्क की बेंच पर बैठाकर बोली, "जरा देखिये, यहां कितनी रोशनी है।"

"कितनी धूल भी है।" इंद्रजीत ने हल्के स्वर में आपत्ति की, "बहुत सारे आदमी हैं। बहुत शोरगुल है।"

बीमारी से उठने के बाद थोड़ा घूमना फिरना शुरू किया है। इंद्रजीत की कमजोरी अभी गयी नहीं है। 'कितनी धूल, कितनी रोशनी। चुपचाप यहां बैठकर थोड़ा दम लीजिये तो। यही रोशनी और धूल अच्छी लगेगी।' नीला ने बोलना चाहा था। लेकिन इतनी बातें मन में सोचने पर भी ठीक-ठाक जबान पर आ सकती है ? इस शोरगुल के बीच में भी उभरता हुआ संगीत का स्वर इंद्रजीत के कानों को क्यों नहीं सुनायी पड़ रहा है। किस तरह समझाये इसको कि इस रिक्शा ट्राम बस की घर्र-घर्र में, फेरीवालों की विचित्र आवाजों में, धूप की तुर्शी में और धूल के प्रलेपन में ही है जीवन। संकरे एकतल्ले के कमरे की गंदी छत की कड़ियां गिन-गिनकर जीवन को नष्ट किया जाता है, पाया नहीं जाता।

हाथ बढ़ाकर मौसमी फूल की एक पत्ती मसल दी इंद्रजीत ने, एकाध घास का तिनका दांत से चबा लिया। दो पैसे की मूंगफली की फर्माइश कर बोला, "क्या पता, लगता तो है कि अच्छा लगने लगेगा।" अचानक प्रसन्नता से पैर झटकते हुए बोला, "बीच-बीच में बच्चों की तरह होने को मन करता है।"

"आप तो बच्चे ही हैं।" नीला ने कहा धीरे-धीरे।

"बच्चा।" निश्वास छोड़ते हुए इंद्रजीत ने कहा, "सच में ही यदि हो सकता। बीच-बीच में सोचकर विस्मित हो जाता हूं कि कैसे आकर्षक दिन पीछे छोड़ आया हूं। जीवन में अब कभी पेड़ पर चढ़कर फल नहीं चुरा सकूंगा, या तालाब में उतरकर पानी नहीं उछाल सकूंगा, ये सब बातें सोचते हुए रोना आ जाता है। उम्र के साथ कितना कुछ खतम हो जाता है।"

"बाकी भी तो बहुत है।" नीला भी पैर फैलाकर बैठी थी। दोनों के पैरों की उंगलियों का स्पर्श होते ही लजाकर सरका कर बैठ गयी।

संस्कारों की रीति यही है, मन जब भर उठता है, उड़ना चाहता है, शरीर तब अपने आप से थक जाता है। पिजरें में बंद पक्षी को जैसे उड़ने न देना।

दो एक मूंगफली के छिलके नीला की गोद में पड़े थे। हाथ से उसे उड़ा दिया इंद्रजीत ने।

बोला, "गीली मिट्टी। ये देखिये न, मेरे दोनों हाथ गीले हो गये।"

"मेरे भी," दोनों हाथ फैलाकर नीला ने कहा। किंचित रक्ताभ, सफेद दो

कोमल पत्ते। भीगी घास और कीचड़ की सुगंध।

"चलिये उठें।"

"चलिये।" नीला का हाथ पकड़कर उठ खड़ा हुआ इंद्रजीत। थोड़ा चौंक सा गया। "आपका हाथ कितना गरम है।"

थोड़ा हंसकर नीला ने जैसे सारी बाधाओं पर विजय पाना चाहा, "कहां इतना गरम है। ये तो स्वाभाविक हैं।" इंद्रजीत का एक बर्फ जैसा हाथ मुट्ठी में बांधकर बोली, "सब लोग तो आपके जैसे नहीं हैं, मौत को ही ध्येय बनाकर बैठे हैं। हम लोग जिंदा रहना चाहते हैं।"

"मैं भी।" अस्फुट स्वर में इंद्रजीत ने कहा, "क्या पता, मुझे भी लगता है कि मैं भी जिंदा रह सकता हूं।"

गली के मुहाने जब पहुंचे, तब भी दो हाथ एक मुट्ठी में बंधे थे। रास्ते के किनारे लोहे के सींखचों के पीछे से एक रेखाओं से भरे बूढ़े चेहरे पर हंसी फूट पड़ी, उन लोगों को पता तक नहीं चला। छह बटा एफ मकान में जब घुसे, तब भी एक तल्ले के एक कमरे के भीतर से घृणा से भरी व्यंग्यात्मक होंठों से और एक तीखी हंसी निकल पड़ी थी। वह थी शांति।

चाबी से ताला खोला इंद्रजीत ने। निस्तब्धता के बीच वह शब्द बहुत कुछ लगा। एक चमगादड़ निकल पड़ा उड़ते-उड़ते।

"अंदर नहीं आइएगा ?" पूछने में ही इंद्रजीत का गला कांप उठा।

"चलिये।" खुद का जवाब नीला के अपने कानों तक भी पहुंचा नहीं।

कालिख लगी चिमनी की रोशनी से पूरे कमरे का अंधकार दूर नहीं हुआ। जमीन की दरारों से हजारों हाथ फैला दिये हैं ठंड की आर्द्रता ने। "थोड़ी सी उष्णता के लिए आतुर हाथों से इंद्रजीत ने अभी तक छू रखा है नीला के हाथों को। गर्माहट के लिए लालायित उंगलियों को सेंक लेगा। उस स्पर्श में केवल शरीर ही नहीं, बर्फ के जैसा मन भी पिघल-पिघलकर बहता है।

पांच उंगलियों के पतले पोरों पर पंचप्रदीप की लौ के समान कांपती रहती है।

खुद अपने आप ही तेल खत्म हुई चिमनी बुझ गयी। बाहर रात कुहासे से अंधी।

"कौन ?" इंद्रजीत के आश्चर्यचकित प्रश्न पर नीला ने भी अलस जड़ित आंखों से देखा था। दरवाजे के पास एक साड़ी का आंचल इतनी देर में स्पष्ट हो गया। अंधेरे में आवाज सुनायी पड़ी, "मैं। शांति।"

उसके बाद भाग कर चली आयी नीला। दोनों हाथों में चेहरा ढके, उस चेहरे पर तब भी कोमल छुअन की सरसता, सांस तीव्रगामी।

शर्म ? वह तो थी ही। शांति ने देख लिया है, वह तो हिसाब पूरा हुआ। लेकिन शांति को देखते ही इंद्रजीत इतनी हड़बड़ी में, जहां से कुछ देर पहले ही एक-एक करके कांटा निकाल कर जूड़ा खोल दिया था, उसी माथे को गोद से उतार दिया क्यों ? नीला ने तो चाहा था कि शांति देखे कुछ भी दिखायी नहीं पड़ा,—हिम्मत ही नहीं हुई इंद्रजीत की—वह भी क्या कम शर्म की बातें हैं।

सारी रात नीला उस दिन बिस्तर से सिर नहीं उठा सकी। कितना दर्द। माथे के दोनों ओर की शिरायें तड़क रही हैं, दोनों आंखों की पलकों में ही इतनी जलन कि कम नहीं हो रही है। देहानुभूति की धूप तो कबकी राख हो गयी है, सुवासित स्मृतियों का धुआं भर अभी तक छाया है चेतना पर।

14

शकुंतला ने जब पहले आरंभ किया था असुविधाओं के विषय में उसने न सोचा हो, ऐसा नहीं। लेकिन लड़कियों का उत्साह इतना आशातीत था कि जोश में आकर इतना झमेला मोल लेने में संकोच नहीं हुआ। मेन रास्ते पर मकान नहीं अंधी गली का पुराना मकान देखकर भी रुपया कम नहीं हुआ। और भी कई लड़कियां बगल में आकर खड़ी हो गयी। भरोसा और बढ़ा है।

पहले महीने की सफलता भी आशा से अधिक हुई। ललिता नहीं आयी न आये। हैं स्टेला, गीता, अणिमा। खुद शकुंतला। सुबह से शाम खटना। शाम से सुबह जागरण।

लेकिन दूसरे महीने के आरंभ से ही खींचातानी शुरू हुई। पहला सा कमोबेश शकुंतला को सोकर काटना पड़ा। बुलाने के लिए दो-एकाध काल आते थे कभी-कभार। बाकी समय जम्हाई लेना, ऊंघना। आलस दूर करने के लिए प्याले के ऊपर प्याला चाय पीना। सीजन डल।

दिनांत में हिसाब मिलाने बैठने से सिर चकरा जाता। आज महीने की दस तारीख, अभी तक जितना आया है हाथ में उससे किसी प्रकार मकान का भाड़ा दिया जायेगा। उसके बाद ? अकेली होने से शकुंतला इतना नहीं घबड़ाती लेकिन और तीन लड़कियां हैं, उनको भी देखना है। उसके ही प्रेम से ये लोग एक बात पर नौकरी छोड़कर चली आयी हैं। उस नौकरी में कोई भविष्य नहीं था। लेकिन महीने के अंत में पाना निश्चित था।

पंद्रह तारीख के बाद शकुंतला चिंतित हो उठी। और इंतजार नहीं किया जा सकता। इन कुछ दिनों में कुल मिलाकर बुलावे के पांच काल मिले हैं। औसतन मिला होगा पचास साठ रुपया। जरूरत है पांच सौ की। कितनी कल्पनायें थीं, सोच रही थी मन ही मन सेवासत्र को और भी बढ़ाने की।

तीसरे सप्ताह अणिमा बीमार पड़ी। और कोई समय होता तो शकुंतला इतनी चिंतित नहीं होती। लेकिन जैसे विपत्तियां भी सुनिश्चित सोच विचार करके आ रही हैं। शुरू में लगा था कि सर्दी से बुखार है। मलेरिया के लिए चिकित्सा हुई और तीन चार दिन। आठवें दिन शकुंतला घबरा गयी। इन दिनों बुखार कम नहीं हुआ। लगता है टाइफाइड हो गया। सेवा में कोई कमी नहीं। सेवा से भी अधिक जरूरी है पथ्य। एक जाने माने डाक्टर को बुलाना भी जरूरी।

डल सीजन, ये भी एक प्रकार से अच्छा ही हुआ। इसीलिए शकुंतला सब समय अणिमा के पास बैठ पा रही है। लेकिन दूसरे महीने के शुरू में मकान का भाड़ा विजली का बिल चुकाने के बाद जो हाथ में बचा, उससे बहुत मुश्किल से सात दिन चल सकेगा।

ललिता का मित्र, मेडिकल स्टूडेंट, एक दिन आकर देख गया। गंभीर चेहरे से अस्पताल में भर्ती कराने को पूछा। यह न हो सके तो, कम से कम अच्छे डाक्टर को बुलाकर अच्छी तरह इलाज हो। अच्छे डाक्टर तो कई परिचित हैं, लेकिन कौन आयेगा बिना विजिटिंग फी के। जब विद्रोह करके निकल आयी थी, तब सभी ने तो रोड़ा अटकाया था। आज फिर से उनके दरवाजे पर जाने से शकुंतला का सिर कट जायेगा।

दूसरे दिन ललिता ने आकर थोड़ा भरोसा दिया। मेडिकल स्टूडेंट अरविंद और भी कुछ दोस्तों से कुछ रुपया जुटा रहा है। सेवासत्र की सहायता के लिए नहीं, अणिमा के इलाज के लिए। डा. उपाध्याय भी एक दिन आकर देखने के

लिए तैयार हो गये हैं।

देखने आनेवाले डा. उपाध्याय ने और भी कुछ अप्रत्याशित उपदेशों की बौछार की। हमेशा की तरह शांत, सौम्य मूर्ति इन हठी लड़कियों की मनमानी के लिए उदास और दुखी नहीं है। सिर के अधपके बालों की तरह मुंह में अंग्रेजी बंगला मिली खिचड़ी बोली। अच्छी तरह देखा, प्रिसक्रप्शन भी लिखा।

शकुंतला को आश्चर्य हुआ, जब घर जाकर डा. उपाध्याय ने दस-दस रुपये के दो नोट भिजवाये। उसी के साथ एक चिट्ठी। शकुंतला का व्यवहार जैसा भी हो अभी भी उन लोगों को स्नेह करते हैं डा. उपाध्याय। हरवक्त मंगल की कामना करते हैं। उन लोगों के विद्रोह से जैसा आघात मिला था। आज की बुरी अवस्था देखकर उतना ही कष्ट पा रहे हैं। उनकी सामर्थ्य कम है, इसीलिए थोड़ी बहुत-आर्थिक सहायता है। शकुंतला जैसे···

अक्षर-अक्षर में रोंये खड़े कर देने वाला दर्द, भरपूर सहानुभूति। फिर भी शकुंतला को लगा कि कहीं न कहीं एक आत्मिक संतोष छिपा हो जैसे। ये कुछ जिद्दी मनमौजी लड़कियां उनके कहे अनुसार न चलकर ही लड़खड़ा गयी हैं, डा. उपाध्याय को इसमें ही एक स्थूल आनंद मिला है। पके बाल को सलाम न करने का फल भुगतो अब।

चिट्ठी पढ़कर फेंक दी शकुंतला ने। लेकिन रुपया भी यदि उसी के साथ फेंका जा सकता। रुपया उठा लेना पड़ा सिर झुका कर, आंचल में भी बांध लेना पड़ा। गरीबी ऐसी ही होती है। शकुंतला ने बार-बार अपने को धिक्कारा।

पोस्टमैन कब फेंक गया था किसी को पता नहीं चला। दूसरे दिन सुबह नौक-रानी ने झाड़ू लगाते समय दरवाजे के कोने से उठाया। लाकर शकुंतला को दी।

मुड़ी हुई एक पत्रिका। जहां तक लगता है साप्ताहिक है। गंदी छपायी, गंदा कागज, पढ़ने पर देखा गंदी भाषा।

लेकिन भेजी किसने। चुनकर सेवास्त्र में ही भेजी क्यों। इस प्रकार की पत्रिका शकुंतला ने इसके पहले कभी नहीं पढ़ी, लेकिन नाम जानती थी। रास्ते के मोड़ पर, ट्राम की खिड़कियों से इस पत्रिका को हाथ में लेकर हाकरों को ऊंची आवाज में चिल्लाते देखा है।

पहले तो कौतूहल से पन्ने पलटना शुरू किया था, इसके बाद एक पन्ने पर

आकर शकुंतला की आंखें अटक गयीं। शीर्षक देखते ही दोनों कान गर्म हो गये, दो-चार लाइन पढ़ते न पढ़ते दोनों होंठ थोड़े से खुल गये, सांस चलने लगी जोर-जोर से।

अनाम किसी ने एक नर्सेस होम की कलंक गाथा गायी है। थोड़ी बहुत कहानी की रूपरेखा, पता ठिकाना छिपाया हुआ है। कहना यथेष्ट है, निशाना है शकुंतला। स्वामी परित्यक्ता एक दुश्चरित्र लड़की और भी कई लड़कियों को बहकाकर कलकत्ता की छाती पर बैठ श्री सेवाधाम के नाम से मनमाना अत्याचार किये जा रही है। उसी का अलंकार सहित, सजा-धजा कर विस्तार पूर्वक वर्णन है।

काल्पनिक कितनी कहानियां भी जोड़ दी गयी हैं। उपसंहार में पुलिस का कर्त्तव्य बोध, साधारण जनता के प्रति, निवेदन किया गया है। इस व्यभिचार के पीठस्थान का असली पता-ठिकाना है लेखक के पास। जरूरत पड़ने पर सब कुछ प्रकाशित किया जायेगा धीरे-धीरे। बहुत से तथ्य हैं, साध्य, प्रमाण, माल मसाला, गंदगी है। पाठक, सब्र कीजिये।

पढ़ा सभी ने। गीता ने पढ़ा शकुंतला के पास खड़े-खड़े। अणिमा ने बिस्तर में लेटे-लेटे। गीता का चेहरा लाल हो गया था, अणिमा का सफेद फक हो गया।—"किसने लिखा हैं शकुंतला दी। किसका है ये काम।"

"क्या पता किसका है।"

पत्रिका को टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिया शकुंतला ने। किसका काम है वह जानती है अच्छी तरह। कम से कम समझ गयी है। बनमाली को छोड़कर ऐसा जहर उगलना और कोई नहीं जानता। उसके शरीर का सारा गंदा जहर जमा है कलम में। अश्लील साप्ताहिक। बनमाली ने जो मीडियम खोजा है, खराब नहीं है।

कलंक का डर नहीं था, लेकिन महीने के अंत में शकुंतला और भी हताश होकर बैठ गयी। सदर दरवाजे का कड़ा अब कभी-कभार ही बजता है। उसी साप्ताहिक के और भी कई अंक निकले हैं। छद्मनामी लेखक ने और भी लानत मलानत की है। सड़ी गली बातें लिखी हैं। नाम अभी तक प्रकाशित नहीं किया है, लेकिन उसका लक्ष्य इसी कीनू ग्वाले की गली का सेवासत्र है, वह क्रमशः स्पष्ट होता जा रहा है।

शुरू में इस पर कोई ध्यान नहीं देगी सोचा था शकुंतला ने। लेकिन कौन

जानता था, कि दो पैसे की इस अश्लील पत्रिका का प्रभाव इतना है, इतनी जन प्रियता है। रास्ते में निकलते ही शकुंतला आजकल समझ जाती है, बहुत से, कम से कम इस गली के सभी लोग, उसकी ओर देख रहे हैं। इन लोगों ने भी पढ़ा है, नहीं तो किस तरह समझ पाये कि कीनू मोदी के बायी लेन का सेविकालय असल में कीनू ग्वाले की गली का सेवासत्र ही है। दबी हंसी देखी है शकुंतला ने सब की आंखों में, कानाफूसी सुनी है। एक सद्य उत्पन्न अंकुर को नष्ट करने के लिए असंख्य हाथ आगे बढ़ आये हैं।

डाक से एक पत्रिका तो नियमित रूप से आ ही रही है, और भी उत्पात शुरू हुआ। डॉ. उपाध्याय ने उसी साप्ताहिक से एक कटिंग काटकर भेज दिया एक बार : ये सब क्या सुन रहा हूं।

शाम होते न होते ही सदर दरवाजे खिड़की से सीटी की आवाज सुनायी देने लगी। मौहल्ले, गैर मौहल्ले के शोहदे दल बांध कर इकट्ठे हो जाते हैं अगल-बगल, पास-दूर, गैस बत्ती के ठीक नीचे अंधेरे में। कुछ कहने का उपाय नहीं है।

रात के अंतिम समय किसी ने बाहर की दीवाल पर साप्ताहिक का आधुनिकतम अंक चिपका दिया है, वह न होगा तो सुबह उठते ही फाड़कर फेंक दिया गया, मोड़ पर जो साइन बोर्ड का सेवासत्र के नाम का और उंगली का संकेत चिन्ह, उसके ऊपर अलकरे से बड़े-बड़े हरफों में जिसे उच्चारित अकथनीय नहीं किया जा सके। ऐसा अश्लील वाक्य लिख दिया है, साइन बोर्ड हटाकर वह भी न हुआ तो आंखों के सामने से हटा दिया गया, लेकिन समय-असमय खिड़की को निशाना बनाकर पत्थरों का फेंकना कौन बंद करेगा।

फिर भी बाहर निकलना पड़ता है। स्वाभिमान खोकर, शर्म छोड़कर। कान से बहरे, आंख से अंधे होकर।

ललिता से एक दिन राह चलते मुलाकात हो गयी। शकुंतला को देखते ही वह बच कर निकल जाना चाहती थी, वह भी भांपने में देर नहीं लगी। शकुंतला ने उसका एक हाथ पकड़कर कहा, "भागने के लिए रास्ता बचाकर निकलना चाह रही थी, क्या कर सकती है, फुटपाथ बहुत ही संकरा जो है। लेकिन उस ओर से एक ट्रक आ रहा था, लगता है तू देख नहीं पायी। और जरा सी देर में ट्रक के नीचे चली जाती तो। या ट्रक से ज्यादा डर तुझे मुझसे है?"

ललिता सकबका गयी और शकुंतला को वह एकदम नजरअंदाज नहीं करना

चाहती है इसके प्रमाण के लिए शायद एक ही साथ बहुत कुछ बोल गयी । "तुम तो खाली मजाक करती हो शकुंतला दी, मैं कहां भाग रही थी ।"

उसकी बात को बीच में ही काटते हुए शकुंतला बोली, "तू ने आना-जाना बिलकुल ही छोड़ दिया है ललिता ।"

ललिता पहले तो मानने को तैयार नहीं हुई, थूक गटकी कई बार । अंत में उसे मानना पड़ा। सेवासत्र में आना जाना अरविंद ने एकदम मना कर दिया है। ललिता अब केवल नर्स ही नहीं है, आज नहीं तो कल डॉक्टर बनने वाले एक प्रमुख सज्जन पुरुष की मनोनीता है। समूचा शहर गंधा गया है, ऐसे घर में जाकर अड्डाबाजी करने का यदि इतना ही चाव है तो वह अरविंद की देहरी पर कदम नहीं रखे । दोनों में से किसी एक को चुन ले ।

कहना बहुत है, चुनने में ललिता से भूल नहीं हुई । शकुंतला ने सब सुनकर कहा, "हूं । तुम लोगों की शादी कब हो रही है ललिता ?"

"अभी कुछ तय नहीं हुआ है। हाल ही में तो अरविंद ने पास किया है, अस्पताल में रहना होगा और भी कुछ दिन ।"

"उतने दिन तक बैठी रहेगी ?"

उतने दिन। शादी पहले ही सुविधानुसार, शुभ लग्न में हो सकती है। कलकत्ते में तो प्रेक्टिस नहीं करेगा अरविंद। यहां बहुत भीड़ है। चला जायेगा मुफस्सिल में। वहां स्पर्द्धा कम, लक्ष्मी खुद ही प्रार्थी है। स्वयं याचिका। बहुत दूर चले जायेंगे वे लोग, पश्चिम के एक छोटे साफ-सुथरे शहर में, खूबसूरत सा एक बंगला, उसी कुटी की रानी ललिता। सब कुछ तो ठीक हो गया है, कब नोटिस दे ललिता, कब नौकरी छोड़ दे। केवल एक वर्ष का इंतजार। आने वाले सुख की कल्पना से ही ललिता का चेहरा चमक रहा है।

एक के बाद एक, दो घटनाओं से शकुंतला और भी घबड़ा गयी।

शाम होने में कुछ देर थी, उस दिन सजा-धजा एक व्यक्ति एकदम ऊपर चला आया। सदर दरवाजा शायद खुला ही हुआ था। गीता से एकदम आमना-सामना हो गया था।

गीता को नमस्कार कर बोला, "जल्दी से तैयार हो जाइये, अभी इसी वक्त चलना होगा।"

महीन चुन्नटवाली धोती, रेशमी कुर्ता। संभ्रांत चेहरा।

"जरूरी केस है शायद ?"

"जरूरी ही है।" बत्ती तब तक जली नहीं थी, पता नहीं चल सका कि वह आदमी थोड़ा सा हंसा था या नहीं।

अणिमा तब तक पूरी तरह से अच्छी नहीं हुई थी, शकुंतला भी घर में नहीं थी। गीता इधर-उधर कह रही थी, जाये कि नहीं। लेकिन पूरे महीने के दौरान यही पहला और एकमात्र काल आया था, इंकार करने का भी मन नहीं करता है। मन ही मन गीता सोचती ही थी कि यदि इसी बीच शकुंतला दी आ जायें तो वह बच जाये। इधर वह आदमी बोल रहा है कि जरूरी केस है। कितनी देर तक और बैठाये रखा जा सकता है।

बोली, "इमरजेंसी केस में ज्यादा रुपया लगता है।" ज्यादा ? कितना ज्यादा? पाकेट से उस आदमी ने कड़े-कड़े नोट निकाले, सब दस दस रुपये के। कौन जाने, हो सकता है दो चार सौ रुपये के भी हों। आंखें चौंधिया गयीं गीता की, एक साथ इतने रुपये देखे आज पहली बार। रुपया ही देखा कितने दिनों बाद। लोभ नहीं संभाल सकी। बोली, "कुछ एडवांस देना होगा।"

"कितना ?"

"पच्चीस रुपये।"

कहते न कहते उस आदमी ने जिस प्रकार से तीन दस दस रुपये के नोट बढ़ाये उससे गीता को मन ही मन अफसोस हुआ कि उसने कुछ और बढ़ाकर क्यों नहीं कहा। उस व्यक्ति को जितनी गरज है केस कितना जरूरी होगा पता नहीं।

अंत में शकुंतला के नाम एक छोटा सा पत्र रखकर गीता निकल पड़ी। तीनों नोट मोड़कर रख दिये पत्र के साथ। शकुंतला दी घर लौटने पर एकदम अवाक हो जायेंगी। पत्र पढ़कर न हो लेकिन रुपये मिलने से।

घर लौटने पर पत्र पाकर शकुंतला पहले तो कुछ समझ नहीं पायी। फिर भी मन में कुछ दुश्चिंता हो गयी। उसके रहने पर गीता को इस तरह नहीं छोड़ देती ये सही था।

दस, ग्यारह, बारह। बहुत देर तक गीता की प्रतीक्षा कर, अंत में कब सो गयी पता नहीं। गीता ने आकर जब कुंडी खड़खड़ायी क्या पता तब एक या दो या तीन बजे थे।

लेकिन ये कैसा अस्त-व्यस्त चेहरा है गीता का, क्या शाम को बाल बांधना भूल

गयी थी। रूखे गालों पर जहां हड्डियां उभरी हैं वहां कितना सूखापन है। दोनों आंखें बुरी तरह थकी हुई लेकिन पुतलियों में इतनी चमक। जाते समय चाहे गीता ने एक मात्र साड़ी खोलकर पहनी हो, अभी वही सैकड़ों बार पहनी हुई लग रही है क्यों।

झट से बत्ती बुझा दी थी गीता ने। आविष्ट रुद्ध आवाज में चाहे कहा भी था, अभी कुछ भी न पूछो शकुंतलादी, कल सब बताऊंगी, लेकिन बोलने को रह नहीं गया और कुछ भी। कभी रुक-रुक कर कभी अस्वाभाविक, उच्छवास्ति तेजी से।

गीता की उखड़ी-उखड़ी बातों से जो सार निकला वह यह था :

बड़े रास्ते पर मोटर खड़ी थी। उस व्यक्ति ने इशारे से उसे बैठने को कहा। उसके बाद बहुत चक्कर लगाकर, घुमा फिरा कर जहां आकर गाड़ी रुकी थी, गीता ने अनुमान लगाया वह शहर के आसपास का इलाका था।

विशाल उस मकान के तल्ले पर तल्ला, सीढ़ियों और बरामदों का अंत कहां। दीवालों पर तैलचित्र असंख्य, अशेष क्यूरियों का संग्रह। महोगनी का पलंग, जमीन पर गलीचे, सारे बदन की प्रतिच्छवि पड़े, ऐसे आईने।

"मरीज, मरीज कहां है ?" ऐसा अद्भुत वातावरण अपने आप ही गीता की आवाज कांप उठी, "कौन बीमार है।"

"मैं," इतनी देर बाद वह व्यक्ति धीमे स्वर में हंस पड़ा था। पलंग पर बैठकर, तकिये का ठांसना लगाकर बोला था, "क्यों चेहरा देखकर नहीं लग रहा है कि एकदम, दुबला हो गया हूं ? छूने से पता चलेगा क्या"—कहते-कहते गीता का एक हाथ अपनी छाती पर रख लिया था।

छिटक कर अलग होने का प्रयास किया गीता ने। गले से आवाज नहीं निकली फिर बोलने की कोशिश की थी, "छोड़ दीजिये। पहुंचा आइये मुझे। जैसा सोचते हैं, वैसा नहीं है आदि-आदि।"

"पहुंचा आऊंगा जरूर। दक्षिणा भी उचित मिलेगा, लेकिन माजरा क्या है। दाम बढ़ाना चाहती हो ?"

"आप गलती कर रहे हैं।"

"गलती की है सारा शहर जानता है, तुम लोग क्या हो, और भूल की है अकेले मैंने।" एक अखबार उसकी आंखों के सामने खोलकर उस आदमी ने कहा था, "लेकिन इन छपे हुए अक्षरों ने भी भूल की है बोलो। अखबारों में तुम्हारी कीर्ति

फैली है। पहले से ही दर भाव करके ठीक करके तुम्हें ले आ सकता था, लेकिन इस तरह नहीं लाने से क्या एडवेंचेर होता। रस नष्ट हो जाता। मजा लेने के लिए थोड़ी बहुत आंख मिचौली खेली है, उसके लिए नाराज मत हो मां कसम।"

गीता का गला सूख गया था। "एक ग्लास पानी दीजिये," बोली किसी तरह।

"पानी क्यों, डाब का पानी दे रहा हूं और भी ठंडा, और भी मीठा।" "सचमुच में उस आदमी ने डाब का पानी लाकर दिया। क्या बताऊं शकुंतला दी, मुझे प्यास लग रही थी। ध्यान से देखा नहीं। डाब का पानी बेस्वाद ही होगा। दो घूंट पीते ही गला जलने लगा, सिर घूमने लगा। बाद में समझ पायी शकुंतला दी, कि डाब के पानी के साथ ब्रांडि या इसी प्रकार का कुछ मिलाया हुआ था शायद।"

"उसके बाद।"

"उसके बाद और क्या। उस आदमी ने खुद ही गाड़ी में पहुंचा दिया यही तो थोड़ी देर पहले। गली का रास्ता भी अकेले चलकर आ सकी।"

थोड़ा सा चुप रहकर गीता ने फिर कहा, "मैं लेकिन रुपया छोड़कर नहीं आयी हूं शकुंतला दी। लेकिन तुम तो अब मुझे भगा नहीं दोगी न ?" मुंह से तब भी हल्की हल्की गंध आ रही थी गीता के। शकुंतला ने उसके बालों में हाथ फिराते-फिराते कहा, "तू सो जा तो अब।"

दूसरी घटना घटी और भी पांचेक दिन बाद।

15

बंद गले की शेरवानी, सब बटन बंद। चूड़ीदार पैजामा। हल्की सी मूंछ, केवल यत्नपूर्वक बढ़ायी ही नहीं गयी बल्कि छोटी भी की गयी हैं। पहले तो शकुंतला ने अबंगाली समझकर हिंदी में बातें करनी शुरू की थी, दो-एक बातों के दौरान ही क्रम टूट गया था।

आगंतुक ने कहा, "मैं बंगाली हूं, पहरावा बिजनेस का है, उसके अतिरिक्त सर्व भारतीय हूं।"

"कैसा केस है ?" शकुंतला ने पूछा।

"डेलिवरी।"

"ठीक है, कब जाना होगा बोलिये।"

आगंतुक हल्के से खांसा। "और भी एक बात है। मेरी पत्नी, मान जिनका केस है, बहुत छोटी है, डेलिकेट हेल्थ···"

शकुंतला हंसी। "उसके लिए चिंता क्यों करते हैं। किसी एक अच्छे डॉक्टर को न हो तो ले लीजिये।"

"डाक्टर ?" अन्यमनस्क सी आवाज में आगंतुक को बोलते सुना गया, "हां एक डाक्टर तो लेना ही पड़ेगा। तब शाम को मैं अपनी पत्नी को ले आऊंगा···।"

"हां, ले आइयेगा।"

पीला दुर्बल चेहरा, सीढ़ियां नहीं चढ़ सके, इतनी दुबली। भद्र पुरुष शाम को कह कर पत्नी को लेकर अब आये हैं, उसी समय शकुंतला को मन में लगा था। लड़की ने बैठते ही एक ग्लास पानी मांगा। उसकी उम्र भले ही अधिक लग रही हो, केवल बदन के किसी-अंग की पूर्णता से—चेहरा अभी भी बच्चों जैसा है।

"यही है मेरी पत्नी।" भद्र पुरुष ने कहा, "जरा बाहर आइये, आपसे कुछ बातें करनी हैं।"

बाहर आकर शकुंतला ने कहा, "लगता है अभी तो बहुत देरी है, आप अभी से घबड़ा क्यों गये। डेलिवरी के वक्त खबर दीजियेगा, तब आऊंगी।"

लज्जित चेहरे से भद्र पुरुष ने सविनय जो कहा, सुनकर शकुंतला स्तंभित हो गयी। डेलिवरी के लिए भद्र पुरुष नहीं आये थे, आये हैं डिलवरी बंद कराने के लिए।

"ये क्या ?"

अकबका कर उस गंजे भद्र पुरुष ने एक सिगरेट जलायी। "मेरी पत्नी का ऐसा डेलिकेट हेल्थ है, वह तो मर ही जायेगी। कर नहीं सकेंगी कोई उपाय ? जरूर कर पायेंगी। वह न हो तो कुछ दिन यही रह जायेगी—"

"डेलिकेट हेल्थ के लिए ज्यादा चिंता मत कीजिये। औरतों का हेल्थ ऐसे सब मामलों में प्राय: डिसपर्टिभ रहता है। सब ठीक ठाक हो जायेगा। देखियेगा।"

और भी थोड़ी देर तक बहस होती रही। भद्र पुरुष जितना ही गिड़गिड़ाते शकुंतला उतनी ही कठोर होती गयी। अंत में उस व्यक्ति ने असली बात बतायी।

"लेकिन हम लोग लड़का बच्चा नहीं चाहते हैं, मिस सरकार। हम दोनों का कोई भी नहीं है।"

"आपकी पत्नी भी नहीं है ?"

"नहीं, मिस सरकार।···मेरी पत्नी भी नहीं है। अब समझीं ?"

कुछ देर चुप रहकर शकुंतला ने कहा, "नहीं। आप गलती कर रहे हैं, ये सब काम हम लोग नहीं करते हैं।"

"समझा," भद्र पुरुष ने कहा," "थोड़ा हाथ मारना चाहती है। ठीक है कितना लगेगा बोलिये, वह आपके ही पास रहेगी, एक चैक लिखे दे रहा हूं।"

"नहीं।" शकुंतला ने दृढ़ स्वर में कहा।

"थोड़ी दया कीजिये। मेरा शुभनाम···"

टोककर शकुंतला ने कहा, "इन सब मामलों के लिए दूसरी जगह है। आप गलत पते पर आ गये हैं। इतना गंदा काम करने के लिए सेवा सत्र नहीं खोली हूं।"

"गलत पते पर आया हूं ?" भद्र पुरुष ने पाकेट से एक कागज का टुकड़ा निकाल कर कहा, "ये देखिये साफ-साफ अक्षरों में नाम-पता लिखा है। देखिये पह-चान रही हैं हाथ की लिखावट।"

पहचान सकी। इतने दिनों तक नहीं देखा, फिर भी वनमाली सरकार के हाथ की लिखावट पहचानने में शकुंतला को देर नहीं लगी। तब पता देकर वनमाली सरकार ने ही भेजा है इस आदमी को शकुंतला के पास, शकुंतला रुपया खाकर यही सब करती रहती है। सारा बदन घृणा से सिकुड़ उठा, लेकिन करने को कुछ नहीं था।

स्टेला सब सुनकर नाराज हो गयी। "तैयार क्यों नहीं हो गयी ? कम से कम हजार रुपया मिल जाता।"

"संभवत: और ज्यादा।" शकुंतला ने कहा, "लेकिन पाप-पुण्य न मानने पर भी न्याय-अन्याय मानती हूं स्टेला। और तुम जितना भी विलायती नाम लेकर घूमती रहो, ये संस्कार तुम्हारे में भी हैं। तुम भी इस देश की लड़की हो।"

"होने दीजिए। फिर भी इन कुछ रुपयों से नये सिरे से शुरू किया जा सकता। खाली न्याय पर अकड़ दिखाकर मुझे क्या लाभ हुआ शकुंतला दी। सभी तो छि:-छि: कर रहे हैं।"

"करने दो," शकुंतला ने कहा। मुझसे नहीं हो सकेगा।

शकुंतला किसी भी अवस्था में टूटती नहीं, यदि इन कुछ लड़कियों का भविष्य उस पर न रहता तो। और जिन पर भरोसा है, उन लड़कियों में भी दुर्बलता के चिह्न दिखायी देने लगे हैं इसीलिए शकुंतला के मन में इस प्रकार की दुर्भावना जाग्रत हुई। आज कितने ही दिनों से गीता का मुंह लटका है, स्टेला बाहर ही बाहर घूमती रहती है, अणिमा बीमारी से ठीक हो गयी है, अभी भी बाहर नहीं निकल सकी। वह सबके चेहरे की ओर ताकती रहती है केवल, मन ही मन अधीर हो उठी है। प्रश्न यही, और कितने दिन। बैरी पृथ्वी के मिले-जुले षड्यंत्र के विरुद्ध खड़े होकर कितने दिन आत्म रक्षा करेंगी ये कुछ संबलहीन लड़कियां।

और कुछ न रहे, इस काम में कम से कम फिटफाट पोषाक चाहिए, सिरस्त्राण चाहिए झकाझक। रुपया न मिलने पर धोबी ने कपड़ा धोना बंद कर दिया है कितने दिनों से, अपने हाथों से धोने पर भी आजकल इधर-उधर से फस से कपड़ा फट जाता है।

शाम को उस दिन और कोई नहीं था, केवल अणिमा और शकुंतला। अणिमा बोल बैठी, "तुम तैयार क्यों नहीं हो गयीं शकुंतला दी।"

अचानक शकुंतला की दोनों आंखों में पानी भर गया, "तूने—तूने भी यही बात कही अणिमा।"

सिर झुकाकर बिस्तर की चादर पर लकीरें खींचते हुए अणिमा ने कहा, "उन लोगों ने भी कहा था, गीता और स्टेला ने। जानती हो शकुंतला दी, स्टेला अब यहां नही रहेगी।"

"नहीं रहेगी?"

"नहीं। उसके दूर के रिश्ते का एक कजिन इतने दिनों तक विदेश में था। वह लौट आया है, स्टेला के साथ शायद बहुत दिनों पहले से ही शादी की बात पक्की हो गयी थी।"

"जानती हूं," शकुंतला ने कहा, "एक-एक करके सब चली जायेंगी।"

मोजा पहले जैसे ऐड़ी से फटता है, उसके बाद धीरे-धीरे फटता जाता है, नीला समझ गयी है कि उसकी हालत भी वैसी ही हुई है। शुरू में था कौतूहल, क्रमशः करुणा, अब—क्या पता उसका नाम क्या है। एकदम से नष्ट होने पर शायद इतना खराब नहीं लगता। लेकिन ये एक अद्‌भुत घाव है, बढ़ता भी नहीं, ठीक भी नहीं होता एक-एक शिरा के रक्त की बूंद-बूंद में ज्वाला की तरह भड़कता है।

टानिक लेकर जिस दिन इंद्रजीत के कमरे में गयी थी, उस दिन इंद्रजीत बिस्तर पर उठा बैठा था। पहले तो लेना नहीं चाहा, बोला था, "मेरे लिए ये सब क्यों खरीदने गयीं।"

"खरीदकर नहीं लायी हूं," नीला ने कहा था, "उस दिन आपने दवा का नाम बताया था, उससे याद आया कि वह हमारे घर में थी। मां के लिए खरीदी गयी थी, लेकिन मां ने मुश्किल से दो चम्मच खायी थी।"

झूठी बात। लेकिन झूठ भी समय-समय पर महान् हो उठता है। ग्लास में दवा अपने हाथ से ढाल दी थी नीला ने, पानी मिला दिया था। दवा खाकर इंद्रजीत इधर-उधर देखता हुआ शायद तौलिया खोज रहा था।

"नहीं है।" नीला ने कहा, "मैंने धो दिया है।"

बिस्तर की चादर का ही एक कोना उठाकर इंद्रजीत होंठ पोंछना चाह रहा था, नीला ने डांटा, "अभी तक आपकी गंदी आदत नहीं गयी। इसीलिए तो बार-बार बीमार पड़ते हैं। धोती के छोर से पोंछ लीजिए।"

इंद्रजीत बुद्धू की तरह थोड़े अप्रतिभ भाव से हंसा। धोती के छोर के अतिरिक्त और भी एक चीज थी, साड़ी का आंचल। लेकिन मनुष्य के अथवा लड़कियों के मन की इच्छाओं पर कोई प्रतिबंध नहीं होता, किंतु उन्हें व्यक्त करने पर तो होता है।

"आपने मेरे लिए बहुत किया।"

सहज, शिशुसुलभ कृतज्ञता की स्वीकृति, फिर भी नीला का मन अनमना हो गया। इंद्रजीत की गंभीर आवाज ही जैसे कृतज्ञता···। जिसके लिए मन की इच्छाओं का अंत नहीं वही वस्तु जब प्रत्युपकार के बाजारू हिसाब के रूप में आती है तब हृदय से तृष्णा का उत्तर जैसे सूख जाता है।

ये बात क्या नीला कभी मानती थी प्रमथ पोद्दार शतरंज खेलने ही नहीं आता है, अथवा कहा जा सकता है कि खेलने आने पर लौटता नहीं है खाली हाथ। धीरे-धीरे उसका केशवकस भर गया है। मां के बचे हुए दो कंगने चांदी का पनडिब्बा, बाबूजी की घड़ी का पट्टा, पुरानी, हो सकती है नीला के अन्नप्राशन के वक्त की, एक जोड़ी पायल से। एक हाथ से अपनी जेबें भर रहा है प्रमथ, और एक हाथ दान दिया है, और कितना बाकी है। और कुछ चालों में ही मात खा जायेंगे—शिवव्रत बाबू।

अंत में बाबूजी के बटनों का सेट भी प्रमथ के हाथों में नहीं देना पड़ता, तब मां बात उठाती भी कि नहीं संदेह था।

खाना बनाते-बनाते मां उठकर चली आई थीं। थोड़ी देर तक दुविधा में इधर-उधर करती रहीं खड़े-खड़े।

"कुछ कहोगी मां ?" नीला ने पूछा।

"मेरी एक बात मानेगी नीला ?"

नीला उत्सुक आंखों से देखती रही। मां ने क्षण-भर की दुविधा के बाद कहा, "तू एक बार देवू के यहां जायेगी ?"

विस्मित या कुछ हद तक किंचित स्तंभित होकर नीला ने कहा, "दादा के पास मैं ? क्यों, मां ?"

"क्यों ? समझती नहीं है क्यों ? ये बीमार पड़े हैं···हाथ खाली है···तू सब बातें देवू से कहकर मेरे पास एक बार आने के लिए कहना।" और, मां ने थोड़ा ठहरकर कहा, "बहू के सामने गलती तो की है तूने, न हो तो और एक बार माफी मांग लेना। संबंध में बड़ी है, इसमें कोई शर्म की बात नहीं है। हजार हो बड़े घर की बेटी तो है, वह जरूर माफ कर देगी।"

"माफ करना, मां। मुझसे नहीं हो सकेगा।"

"नहीं हो सकेगा ?" तीखी नजरों से मां कुछ देर तक देखती रहीं। "ठीक है। तू मत जा, मुझे ही जाना होगा," लंबी सांस छोड़कर कहा, "तुम सब लोगों के प्राणों से बढ़कर मेरी अपनी इज्जत तो बड़ी नहीं है।"

मां जायेंगी ? लड़के के अमीर चचिया ससुर के घर बहू के मान-मर्दन के लिए? क्षण भर क्या सोचा नीला ने, झट से उठ खड़ी हुई।

"तुम्हें नहीं जाना चाहिए मां, मैं ही जाती हूं।"

लौटकर आयी दो घंटे बाद। मां ने उत्सुक आंखों से पूछा, "क्या हुआ रे ?"

हाथ के बैग को बिस्तर के ऊपर फेंककर नीला ने कहा, "क्या होगा। गयी थी।"

"देवू से मिली ?"

"नहीं। भैया टूर पर गये हैं।"

"बहू से ?"

"मिली।"

मां तेज नजरों से लड़की को कुछ क्षणों तक परखती रहीं, "उन लोगों ने शायद तेरा अपमान किया है ? बहू ने शायद पहचाने से इंकार किया है ?"

"आह मां," भरी आवाज में नीला ने कहा,"दया करके चुप रहो। थोड़ा अकेले रहने दो। अपमान ? अपमान तो जरूर किया है। लेकिन असाधारण घर की लड़की है, थोड़ा असाधारण भाव से ही किया है। मेरे पहुंचते ही सब घबरा उठे, आदर से बैठाया। नाश्ता ला दिया, भाभी ने इस ढंग से बात करना शुरू किया जैसे कुछ हुआ ही नहीं।"

"यहां की हालत के बारे में कुछ कहा नहीं तूने ?"

"बोलने की फुर्सत ही कहां मिली। इतने आदर सत्कार के बीच क्या अपने अभाव की बात मुंह से निकाल सकती ?"

"तू जब गयी तो बहू क्या कर रही थी ?"

"पंखा खोलकर पालतू कुत्ते को प्यार से डांटा एक बार। साड़ी का ढेर लाकर बोली फैशन फेयर से ये सब खरीदा है इस बार। दाम दो सौ, चाचा ने दिया है जन्म दिन पर। ये डेढ़ सौ मेरी दिल्ली वाली फुफेरी बहन ने रुपया भेजा था उसी रुपये से खरीदी है। और ये तुम्हारे भाई की दी हुई है। तुम फैशन फेयर कब गयी थीं, ननदजी ? वहां पर सस्ते में ऐसी ही मन मुताबिक चीज मिलती है—चलो न एक दिन।"

"तूने क्या कहा ?"

"मैं और क्या कहूंगी। पहनी हुई इस साड़ी में कंधे के पास से एक खरोंच लग गयी थी उसी को छिपाकर सिमट कर बैठ गयी।"

"इसके बाद ?"

"इसके बाद दो आदमी आये। बातचीत से पता चला मोटर के कैनवेसर हैं। कैटलाग खोलकर बहुत तरह का मोल-भाव हुआ। भैया तो नहीं थे, भाभी ने ही बातचीत बढ़ायी। अंत में मेरे साथ उनका परिचय करवा दिया। मेरी ननद मिस नीला राय। ये भी कुछ दिनों से एक 'कार' खरीदने की सोच रही हैं। इनके साथ बात कीजिए न।"

"बोलो मां, इससे बढ़कर अपमान एक आदमी किसी आदमी का कर सकता है ?"

"तूने क्या कहा ?"

"दलाल दो बार कैटलाग लेकर मुझे रोककर बैठा था। किस मॉडेल का दाम कितना, किसका पिक्अप अच्छा है, किसका स्विच···

"सब समझाना शुरू किया था। मेरे दोनों कान तब लाल हो उठे थे। मुझे मोटर की जरूरत नहीं है, कहकर उन लोगों को नमस्कार कर किसी प्रकार भागकर चली आई हूं।"

16

एक-एक करके जो लोग आये थे किनू ग्वाले की गली में, उन्हीं में से एक-एक करके दो-चार लोगों ने खिसकना शुरू कर दिया। नौटंकी का अंत देखे बिना ही दो-चार दर्शक जिस प्रकार खिसक जाते हैं, वैसे ही।

स्टेला चली गयी विवियन के साथ। कैसा कजिन था किसे पता, बचपन में शायद वे दोनों एक ही मिशन में थे। दो अनाथों के बीच सुख-दुख के बंटवारे का इंतजाम तभी से हुआ था कि नहीं इस वक्त कहना कठिन है। उसके बाद दोनों दो दिशाओं में छिटक पड़े थे, स्टेला मिशन से नर्सिंग स्कूल, वहां से अस्पताल से होती हुई सेवासत्र में। और विवियन ने कितने घाटों का पानी पिया इसका कोई हिसाब नहीं। अभी है एक वर्कशाप में। बचपन की अनेक शैतानियों के निशान हैं कोहनियों पर, पीठ पर, घुटनों पर। पक्की उम्र में और एक निशान बढ़ गया है, गाल पर। एक गहरा घाव, यह भी पीटे जाने का निशान है, लेकिन ग्लास हाथ में लेकर। दो-एक टुकड़ा हो सकता है भीतर घुस पड़ा हो।

जाने वाले दिन स्टेला एक छोटी-सी चिट्ठी लिखकर रख गयी थी। शकुंतला के सामने बताने का साहस नहीं हुआ। शरीफ पर अत्यधिक अत्याचार करके विवियन खुद भी डूब रहा है। बीमार पत्नी से भी बुरा बर्ताव करना आरंभ कर दिया है। किसी की भी बात नहीं मानता है, सिवाय स्टेला के। बहुत घूमने के बाद स्टेला के पास ही यदि वह आया है जब, स्टेला उसे अल्कोहल के प्रलय समुद्र से बचायेगी।

"महान कार्य है," पत्र मोड़कर रखते हुए शकुंतला ने कहा, "लेकिन बेवकूफ लड़की के दिमाग में ये बात कैसे नहीं आयी कि वह आदमी जो आज उसके पास आया है वह उसी शराब के नशे में ही आया है। स्टेला उसकी शराब जिस दिन छुड़ायेगी, आंखों से अंधेरा भी छंट जायेगा, उस दिन वह फिर से अपनी पत्नी के पास ही लौट जाना चाहेगा।"

इतने दिनों तक वनमाली सरकार ने दूर से ही प्रहार किया है, उसका किसी दिन दोबारा आमने-सामने खड़े होने का साहस होगा, शकुंतला ने सोचा नहीं था।

काले को यदि सुंदर शब्दों में नीला कहा जाये तब यह वनमाली नील कलेवर का है, वस्त्र पीले नहीं, शुद्ध खद्दर के। दरवाजा खोलकर नीला अवाक हो गयी। मुंह पर ही दरवाजा बंद करे कि नहीं सोचने में जितना समय लगा, वनमाली उसी बीच घुस पड़ा। आया है तो अच्छा ही हुआ, उसके साथ कुछ बातें करने की आवश्यकता शकुंतला को भी थी।

"इस वक्त घर में हो?"

"आप तो जानते ही हैं कि अब मेरा बाहर बुलावा ज्यादा नहीं होता है।"

"होता है या नहीं। ऊपर चलो। बैठने के लिए भी नहीं कहोगी?"

"चलिए। लेकिन आप और क्या चाहते हैं बनमाली बाबू। और कौन-कौन से अस्त्र हैं आपके पास—।"

बनमाली ने बुद्धू की तरह देखा। "अस्त्र? मैं कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूं शकुंतला।"

"नहीं पा रहे हैं? तीर, बराबर तीर छोड़े जा रहे हैं, शिकार छटपटा रहा है कि नहीं देखने के लिए दौड़े चले आये हैं, फिर भी नहीं समझ पा रहे हैं? और सज्जनता का ढोंग मत करिए वनमाली बाबू। आप साप्ताहिक में—सेवासत्र के नाम पर कलंक प्रचार नहीं लिखते हैं? आप प्रचार नहीं करते हैं कि विवाह के अतिरिक्त किसी सुख का लालच यदि किसी को हो, तब वह आये इसी सेवासत्र में? हम लोग रुपये के बदले अनचाहे—मातृत्व की संभावना को नष्ट करते हैं, ये प्रचार भी आपका है कि नहीं बोलिये?"

पहले तो वनमाली एक सभ्य व्यक्ति की तरह चेहरा बनाये बैठा रहा, धीरे-धीरे चेहरे की मांसपेशियां कठोर होती गयीं, जैसे खुद को संभाल लिया हो।

कहा, "मैंने ही, मैंने ही प्रचार किया है। सब कुछ तुम्हारी भलाई के लिए शकुंतला। यदि तुम्हारा विचार बदल जाये, यदि···।"

"विचार बदला कि नहीं यही देखने आज आये हैं शायद। आप घर जाइये वनमाली बाबू। मेरा विचार बदलता नहीं है। घर लौटकर कलम से जितना विष उगल सकते हैं उगलिये जाकर। आपके जहर से अब मुझे कोई डर नहीं है।"

अधखुली आंखों से वनमाली मोहक मुद्रा में हंसा। "जानता हूं। जानता हूं इसीलिए तो बार-बार आता हूं।"

लेकिन वनमाली के सभी अस्त्रों का पता नहीं था शकुंतला को। केवल शब्द वेधी ही नहीं, घर भेदने का मंत्र भी वह जानता है।

स्टेला चली गयी है, अणिमा सो रही है, गीता का मन भी उड़ने-उड़ने को हो रहा है। बाहर ही बाहर घूमती रहती है गीता, घर लौटते ही निढाल हाथ-पैरों को फैला देती है।

"सिर घूम रहा है शकुंतला दी।"

"घूमेगा नहीं? रात-दिन घूमती क्यों रहती है।"

"घूमती हूं क्या शौक से, भाग्य घुमाता रहता है। फिर घूमने-फिरने से ही क्या सिर घूमता हूं। पेट भरा रहने से दिमाग भी ठीक रहता है। दर-दर घूमते-घूमते दोनों पैर अवश हो जाते हैं, लड़का होती तो किसी पेड़ के नीचे दो घड़ी आराम कर लिया जाता। लड़की हूं, रास्ते के मोड़ पर दो मिनट खड़े होने पर आदमी लोग ताकना शुरू कर देते हैं। कम मुसीबत है। फिर भूख लगने पर तो दो पैसे की मूंगफली खरीद कर चबाते-चबाते चलती रहूं, या रास्ते के नल से पानी पी लूं, यह भी तो खराब लगता है।"

गली का मुहाना जहां पार्क के पास बड़े रास्ते पर मिलता है, ठीक वहां पर एक दिन शाम को शकुंतला ने देखा, गीता किसी के साथ जैसे बात कर रही हो। आदमी का चेहरा दूसरी ओर था, कम प्रकाश में पहचाना नहीं गया। फिर भी मुद्रा से परिचित-सा लगा।

गीता के घर लौटने पर सोचा था पूछेगी, लेकिन अंत तक शकुंतला को याद नहीं रहा।

फिर तीनेक दिन के बाद गीता को एक रिक्शा से उतरते देखा शकुंतला ने। वह भी पीछे-पीछे आ रही थी, गीता देख नहीं पायी। घर की चौखट पार करने

के बाद शकुंतला ने गीता की पीठ पर हाथ रखा। "कहां गयी थी ?"

क्षण भर के लिए ठिठक गयी गीता, दूसरे ही क्षण खुलकर हंसने की चेष्टा की। "ओह—शकुंतला दी, कितना घूमी हूं न आज, लगता है दोनों पैर ही नहीं हैं।"

सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते शकुंतला ने धीरे-धीरे कहा, "तूने लेकिन आश्चर्य में डाल दिया गीता। रिक्शे के हिलने से कमर या पीठ में कभी-कभार दर्द होते सुना है, लेकिन पैर दर्द की बात तो पहले-पहल सुनी है।"

गीता हकबका कर शायद कोई और कैफियत देना चाह रही थी, शकुंतला की आंखों की ओर देखकर चुप हो गयी।

अपने लिए अलग से एक पाव दूध लेती है, और उस दिन बाहर से लौटते समय दो साबुन ले आयी। सुगंधित तेल, स्नो। छिपाकर रखती है सब, बिस्तर के नीचे।

उस दिन दरवाजा बंद कर गीता शीशे के सामने खड़ी होकर चेहरे पर क्रीम मल रही थी, सोने जाने के पहले। सोचती थी कि शकुंतला सो गयी है। गले तक चादर उतार शकुंतला उसकी ओर ही देख रही है, पता नहीं चला पहले तो। क्रीम छुपाकर रखते समय आमना-सामना हो गया।

"दोनों गाल बहुत चड़चड़ा रहे हैं शकुंतला दी। इसीलिए थोड़ा···।"

शकुंतला ने फिर से चादर चेहरे तक खींचकर मोड़ लिया। सर्दी में चेहरा चड़चड़ाना कोई आश्चर्य की बात नहीं, लेकिन इतना स्नोक्रीम कहां से आता है, आश्चर्य तो यही है।

इच्छा होने पर गीता से पूछा जा सकता है, उसकी अनुपस्थिति में बिस्तर उलट-पुलट कर रहस्य उजागर करने की कोशिश की जा सकती है। लेकिन खुद को इतना नीचे नहीं गिरा सकती है शकुंतला।

ठोकर खाकर पिछड़ती जा रही है, लेकिन नीचे नहीं झुकेगी।

फाल्गुन की शुरुआत में ही एक दिन सेवासदन के पते पर गुलाबी लिफाफे में बहुत सारी चिट्ठियां आयीं। ललिता की शादी का निमंत्रण। सबको अलग-अलग चिट्ठी भेजी है। अरविंद के पिता के नाम से छपी हुई चिट्ठी, मामला तब सामाजिक रीति के अनुसार ही तय हो रहा है।

अरविंद के पिता की अनुमति मिलेगी कि नहीं ललिता को संदेह था। सब

झमेला खत्म हो गया है, निमंत्रण पत्र के अक्षर इसके साक्षी हैं। शकुंतला मन-ही-मन जैसे ललिता का खिला हुआ चेहरा देख पा रही हो।

हरेक चिट्ठी के उल्टी ओर यद्यपि ललिता ने अपने हाथ से सबसे आने के लिए विनयपूर्वक निवेदन किया है, शकुंतला ने सोचा खुद आकर क्या ललिता एक बार सभी से कह नहीं सकती थी। हो सकता है शादी का छिटपुट सामान खरीदने में फंसी हो। लेकिन पांच-सात मिनट के लिए ही आ जाती।

लेकिन इतनी पुरानी सहेली, पत्र द्वारा निमंत्रण भेजने की गलती को क्षमा करना ही होगा, सब के पास जो कुछ है खोज-खाज कर एक मनपसंद प्रेजेंट खरीदने की बात भी सोचनी होगी।

कुल बीस रुपये इकट्ठे हुए। इसमें मनमुताबिक चीज मिलना तो मुश्किल है, लेकिन आकर्षक होने पर चलेगा। ललिता तो जानती है कि उसके सेवासत्र की सहेलियों का अंदरूनी हाल क्या है।

तीनों ही जायेंगी यह तय हुआ था, लेकिन खाना खाने के ठीक पहले ही गीता अड़ गयी।

"क्या हुआ है बोल।" शकुंतला ने पूछा।

दूसरी ओर चेहरा घुमाकर गीता बोली, "मेरी तबीयत ठीक नहीं है। तुम लोग जा रही हो, मेरी ओर से भी बधाई दे देना शकुंतला दी।"

"तबियत ठीक नहीं है ?" तीखे स्वर में बोल उठी शकुंतला। और भी तीखी नजरों से देखा। थोड़ा हंसकर बोली, "तबीयत तेरी ठीक है गीता, ठीक नहीं है मन। ललिता की शादी हुई, वह सुख से रहने जा रही है, तू जलन के मारे मरी जा रही है न। मेडिकल स्टूडेंट पर तेरा भी लोभ था क्या बोल ना ?"

गीता ने कोई उत्तर नहीं दिया। यदि देती, तब शायद शकुंतला और भी कुछ बोलती, जितनी आग थी सब उगल देती। लेकिन एक शब्द भी नहीं कहा गीता ने, दीवार की ओर चेहरा करके जो सोयी तो सोती रही। रास्ते पर आकर शकुंतला का मन खराब हो गया। आवेश में इतनी कड़ी बातें बोलना अच्छा नहीं हुआ। हजार हो ये सब बच्चियां हैं, शकुंतला को छोड़ और कोई आसरा नहीं है उनका। इतना सब झमेला हुआ, किसी को जरा-सा भी कष्ट नहीं दिया, आज क्या हुआ, बिना वजह कितनी सारी अप्रिय बातें निकल पड़ीं।

जिस बोर्डिंग में रहती थी ललिता, उसी के सुपरिंटेंडेंट के घर में ही विवाह का

आयोजन है । इतना सब आडंबर होगा, शकुंतला पहले से सोच भी नहीं सकती थी । फूलों से सजाया हुआ गेट, मंगलघर, बिजली की चकाचौंध । अल्प परिचित भी छूटा नहीं है, मोटर गाड़ी भी खड़ी हैं तीन-चार । डा. उपाध्याय भी आये हैं । वे बहुत व्यस्त हैं । वे कुछ नहीं खायेंगे । कहीं खाते नहीं हैं, फिर भी आये हैं । अरविंद और ललिता दोनों ही उनके अति प्रिय हैं, केवल आशीर्वाद देकर चले जायेंगे ।

आशीर्वाद देने आते हुए ललिता के निकट शकुंतला और अणिमा को देखकर थोड़ा ठिठक कर खड़े हो गये । भौहें अपने से ही सिकुड़ गयीं, इतना भर देखते ही रुमाल निकाल कर मुंह पोंछा । चश्मा ठीक कर लिया एक बार । शकुंतला शंकित हो उठी । वह जानती है कि ये उपदेश की भूमिका है । यहीं पर उपदेश देना शुरू करेंगे क्या डा. उपाध्याय, इन बिरादरी बाहर लोगों के सामने विनम्र वधुवेशिनी एक सफल लड़की के सामने साधारण से कपड़े पहने उदास चेहरे वाली दो लड़कियों को समझाना शुरू करेंगे कि वे क्यों बर्बाद हो गयीं ।

लेकिन बहुत व्यस्त हैं डा. उपाध्याय, आज शायद उपदेश तक देने की फुर्सत नहीं है । ललिता को सामान्य-सी दो-एक समयोचित मधुर बातें कहकर विदा ली ।

कमरे के अंदर अब गयी थी ललिता । बोली, "छत पर चलेगी शकुंतला दी । चलो न खुले में खड़े हों थोड़ा ।"

अटारी के सामने खड़ी होकर ललिता ने कहा, "तुम लोगों के आने से मुझे बहुत खुशी हुई शकुंतला दी । मैं खुद नहीं जा सकी इसलिए गीता शायद गुस्से से नहीं आयी ?"

शकुंतला कोई कैफियत देने जा रही थी, लेकिन उन बातों पर ललिता का ध्यान नहीं है ।

"जानती हो शकुंतला दी, इस शादी का सब खर्च वह दे रहा है, सब । उसके पिता आकर मुझे देख गये हैं, इतने अच्छे आदमी हैं कि क्या बताऊं । उसकी मां तो है नहीं, मुझे जाते ही सब भार लेना पड़ेगा । बोलो तो शकुंतला दी, मुझसे क्या इतना सब संभल सकेगा । गृहस्थी के बारे में मैं क्या जानूं ।"

मुंह दबा-दबाकर हंस रही थी शकुंतला । बोली, "जान जायेगी धीरे-धीरे, सब जैसे जान लेते हैं । लड़का होने पर खबर देना ललिता, केस पहले से ही बुक किये जाती हूं ।"

सिर झुका लिया ललिता ने, शर्मीली आंखें उठाकर बोली, "लड़का तो होगा नहीं शकुंतला दी।"

शकुंतला हंस पड़ी। "लड़का नहीं होगा क्यों ?"

"लड़का नहीं लड़की। वे कहते हैं कि पहले-पहल लड़की होना ही अच्छा है...।"

मुस्कराते हुए शकुंतला ध्यान से देख रही थी ललिता को। कैसी बुद्धू-बुद्धू-सी लेकिन सुखी लग रही है ललिता। खूबसूरत भी लग रही है इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता। थोड़ा-सा पाते ही लड़कियां सुखी हो जाती हैं शकुंतला को जैसे यह बात पहली बार पता चली हो। किसे पता, लड़कियों की मूर्खता ही सुख है या सुख ही सौंदर्य है।

लौटने में जितना समय लग जाने की आशंका थी उससे कुछ कम ही लगा है। आज लगता है एक ही साथ बहुत सारे विवाहों का दिन है, घरों में अभी तक कुछ मद्धिम-सा बिजली का प्रकाश हो रहा है। गली में तो आ गयी लेकिन घर का दरवाजा नहीं खुल रहा है।

"गीता सो गयी है।" अणिमा ने कहा और कई बार कुंडी खटखटाने पर अचानक सशब्द दरवाजा खुल गया। अंदर घुसते-घुसते शकुंतला ने नाराजगी के स्वर में कहा, "इतनी देर तक क्या कर रही थी ?"

"सो गयी थी।"

शकुंतला ने गीता की ओर देखा। ढलके उस आंचल के, बिखरे हुए जूड़े में, अलस भाव छिपा हुआ है, लेकिन आंखों में ऐसा कुछ नहीं जिससे पता चले कि इसी समय सोकर उठी है। बिना कारण गीता को एक झूठ बोलते सुनकर आश्चर्य हुआ।

आश्चर्य होने में और भी कुछ बाकी था। बैठकखाने का दरवाजा भिड़ा हुआ था, भीतर बत्ती जलती देखकर शकुंतला ने धीरे-धीरे एक दरवाजा खोला। कुर्सी पर बैठा है वनमाली सरकार, कोई किताब पढ़ रहा है।

"आप इस वक्त ?"

आंखों से चश्मा उतार कर साफ कर वनमाली ने पाकेट में रखा। जम्हाई लेकर कहा, "तुम अब आयी हो ? मैं तब से बैठे-बैठे...।"

"आप इस वक्त कैसे, मैंने पूछा था।"

"मैं तो आता ही हूं," वनमाली हंसा, "और तुम तो जानती हो, शाम के अतिरिक्त मेरे पास समय नहीं। देख ही रही हो, मैंने अभी तक आशा नहीं छोड़ी है शकुंतला।"

इसके बाद वनमाली ने पाकेट से एक कागज निकाला। "इसे पढ़ो। ऊपर-ऊपर देखने से ही शकुंतला अवाक हो गयी। देखा बनमाली की ओर, वह अधखुली आंखों से हंस रहा था। आज एकदम नये अस्त्र के साथ आया है बनमाली। अखबार में सेवासत्र की स्तुति लिखी हुई थी। अखबार के कर्त्ताधर्त्ता ने पता लगाया है कि कलकत्ता के एक सेविका प्रतिष्ठान के नाम पर हाल ही में जो विराट अभियोग लगाया गया है, वह एकदम झूठा है, इत्यादि।

"आपने लिखा है ?"

वनमाली ने सिर हिलाकर स्वीकार किया, "मैंने ही। अब शायद समझ सकती हो कि मैं बहुत बुरा नहीं हूं। तुम मुझ पर विश्वास करो शकुंतला—"

टोकते हुए शकुंतला ने कहा, "इतनी जल्दी मेरा विचार नहीं बदलता है। अच्छा हो आप आज जायें वनमाली बाबू। मुझे सोचने का थोड़ा समय दीजिए।"

"बहुत अच्छा।" वनमाली ने बाहर निकलते-निकलते कहा, "मैं केवल अनिष्ट करना ही नहीं जानता हूं शकुंतला।"

बनमाली के जाने के बाद शकुंतला अपने सोने के कमरे में आयी। गीता तब तक फिर सो गयी थी। शकुंतला ने पूछा, "सो गयी है ?"

गीता ने अस्फुट स्वर में क्या कहा कुछ समझ नहीं आया। शकुंतला ने कहा, "ये कब आया था रे ?"

"बहुत देर पहले, तुम लोगों के जाने के कुछ ही देर बाद।"

"इतनी देर तक, तीन चार घंटे से वह घर में बैठा था, और तू इस कमरे में सो रही थी ?"

"हां, शकुंतला दी।"

फिर से अंतर्भेदी दृष्टि से शकुंतला ने देखा गीता की ओर। आदमी की जुबान जो बोलती है आंखें सब समय वही नहीं बोलती हैं, झूठी बात में यही तो मुश्किल है।

शकुंतला ने किया क्या, कड़े हाथों से गीता की कलाई पकड़ ली, "तू छिपा

रही है गीता । ये आदमी सारे समय इसी कमरे में था, हम लोग इतनी जल्दी लौट आयेंगे, तुम लोगों ने सोचा भी नहीं था; सही है कि नहीं बोल।''

गीता का हाथ अवश हो गया था, अस्फुटित स्वर में गिड़गिड़ाते हुए धीरे-धीरे बोली, "हाथ छोड़ो शकुंतला दी।"

बिना देखे शकुंतला बोलती चली गयी, "तब उसी के साथ तू रिक्शे में घूमने जाती थी, वही तुझे साबुन स्नो उपहार देता था, क्यों ? मुझे कुछ दिनों से संदेह हो रहा था, पहले से ही समझना अच्छा था । सुन गीता, तुझे साफ-साफ कहे देती हूं, यहां वह सब नहीं चलेगा । तू उसे साफ-साफ बता देगी, वह अब दुबारा यहां नहीं आये।"

गीता कुछ कहने जा रही थी, शकुंतला बोलती चली गयी, "मैं उसकी नस-नस पहचानती हूं, मुझे क्या समझायेगी तू । तुझसे भी कहती हूं गीता, यहां रहते हुए वह सब नहीं चलेगा ।"

उस दिन बहुत रात तक शकुंतला की उत्तेजना शांत नहीं हुई । वनमाली का विजेता रूप जैसे उसकी आंखों में तैर रहा था। इस बार बाहर से पत्थर नहीं फेंका गया, भीतर घुसकर बातों से मारा है । शकुंतला की मर्जी न होने से क्या होगा, बंगाल में लड़कियों की कमी नहीं है। शकुंतला के घर में ही ऐसी लड़की है जो वनमाली के इशारों मात्र पर उसके पीछे भागने के लिए तैयार है।

गुस्सा आने लगा शकुंतला को, माथे की नसें तड़कने लगीं, गुस्सा आया ललिता पर कैसे स्वतंत्र गृहस्थी बसा ली है—अणिमा के ऊपर बीमार लड़की, बोझ के समान गर्दन पर सवार है, गुस्सा आया वनमाली पर, गीता पर—ऐसी कौन-सी खराब स्थिति हो गयी थी गीता की—अब तो आधा पेट खाना नहीं पड़ता है—जो अंत में एक चरित्रहीन आदमी की बातों में फंस कर—। छि छि। शकुंतला के अपने ही घर की लड़की से वनमाली ने शकुंतला को हरा दिया, यह अफसोस ही जैसे सबसे अधिक हो ।

ठीक दो दिन बाद सुबह उठकर गीता दिखायी नहीं पड़ी । एक चिट्ठी मिली बिस्तर पर । संक्षेप में थोड़ी-सी बातें । 'जा रही हूं । अब कभी मिलूंगी कि नहीं पता नहीं । लेकिन निश्चित रहो, खराब रास्ते पर नहीं जा रही हूं । वनमाली बाबू के साथ मेरा जैसा संबंध तुम सोच रही हो वैसा नहीं है । वे मेरे साथ शादी

करेंगे। आने वाले सप्ताह में दिन तय हो गया है। आशीर्वाद नहीं दे सकतीं तो क्षमा कर देना।'

चमत्कार, पत्र के टुकड़े कर फेंकते-फेंकते शकुंतला ने सोचा। गीता के साथ शादी करेगा वनमाली। चमत्कार।

गीता की छोड़ी हुई तेल की शीशी पैर से लगकर टन से छिटक गयी, खाली स्नो के डिब्बे बिखरे पड़े हैं यहां-वहां। फटी हुई एक साड़ी दरवाजे के कोने में पड़ी हुई है। ये सब गीता नहीं ले गयी।

अणिमा तब तक बिस्तर पर सोयी हुई थी। उस दिन शकुंतला को गुस्सा आया था, आज लेकिन अजीब-सी अनिर्णित करुणा से मन भर उठा है। अथवा एकदम से खाली हो गयी है। धीरे-धीरे अणिमा के सिरहाने खड़ी होकर शकुंतला ने कहा, "अंत में तू और मैं ही रह गये अणिमा। तू और मैं।"

17

टेबल पर थकी हुई कोहनियों को रखकर मनींद्र दोनों हाथों से चेहरा ढक कर चुपचाप बैठा था। अभी भी प्रेक्षागृह से सब लोग नहीं निकले हैं। बहुत-सी आवाजें बहुत-से जूतों की खस-खस आवाज। और थोड़ी देर बाद तेज बत्तियां गुल हो जायेंगी एक-एक करके, झाड़ू पड़ेगी। धूल से सभी चिह्न मिट जायेंगे एक रात के अभिनय की स्मृति के।

पहले नाटक का आज सौवां अभिनय हो गया। थोड़ी देर पहले ही सारा वातावरण कितनी उत्तेजना से भर गया था। नाट्य गुरु ने भाषण दिया था, उत्तर में मनींद्र को भी विनीत भाव से कुछ बोलना पड़ा था। उसके बाद नाटक। प्रत्येक दृश्य के अंत में तालियां, ऐसा कि किसी-किसी अंश के लिए तो दोबारा अभिनय की फर्माइश की गयी।

जो किताब लिखने के बाद घर के बक्से में नीचे छह महीने दबी पड़ी थी अज्ञातवास में छपने के बाद किताबों की दुकानों में धूल-धूसरित रैक के अज्ञातवास

में, उसी के नाट्य रूपांतरण का शततम प्रदर्शन होगा, इस बात पर मनींद्र को विश्वास करना कठिन था।

लेकिन इन छह महीनों में विश्वास करने की शक्ति कुछ कम नहीं बढ़ी है। किसी भी चीज पर मनींद्र को विश्वास नहीं था न ईश्वर पर न धर्म पर। पतिव्रता, पत्नी प्रेम, पुत्र स्नेह, मातृ-भक्ति जैसी ऊंची मानसिक धारणाओं पर हंसी-मजाक करता था। वही मन धीरे-धीरे कैसे बदला जा रहा है। विश्वास करने की शक्ति बढ़ रही है उसकी। धर्म पर, ईश्वर पर, भाग्य पर। केवल 'देवी सुवचनी'। और 'इतू पूजा' के अतिरिक्त सभी धार्मिक अनुष्ठानों पर इसका अविश्वास है। पापियों को घोर नरक में भेजेगा, ऐसी ईश्वरीय शक्ति उसके पास नहीं है, लेकिन जितनी सामर्थ्य है, उतनी वहन कर रहा है। मनींद्र के नाटक के दुश्चरित्र पात्रों के भाग्य में घोर पश्चाताप लिखा हुआ है, उन लोगों को कुत्ता काटेगा ही, कुत्तों के हाथों से बच निकलने पर रेल दुर्घटना से कौन बचायेगा।

अदृष्ट उसकी ओर सामने चेहरा किये मंद हंसी हंस रहा है, अदृश को मनींद्र जरूर मानेगा।

दो नाटक चल रहे हैं, एक के तो सौ दिन पूरे हो गये, और एक का रिहर्सल हो रहा है। यह खूब अच्छा है, नाटक लिखना या उपन्यास का नाट्य रूपांतर करना। जीवन के सूत्रों की रचना का विराट दायित्व नहीं, केवल मात्र कुछेक चरित्रों को मंच पर खड़ा कर दो, कुछ जोरदार बातों को जुटा दो। थोड़ा सा अवास्तविक, थोड़ा-सा अतिवास्तव, थोड़ा-सा आकस्मिक इसी का नाम तो नाटकीयता है।

जितने दिन कहानी उपन्यास लिखे हैं, किसने जाना है मनींद्र को। संपादकों ने पन्ने भरने के लिए छापा है, प्रकाशकों ने बेमन से बात की है। विद्वान समालोचकों ने कभी गाल पर चांटा मारा है, कभी उन्हीं हाथों पीठ थपथपायी है। दो-चार स्थानों पर लिपि कौशल की इस सराहना को पढ़कर अपने को ही धिक्कारा है। क्या होगा लिखकर, जीवन भर फूटे भाग्य को लेकर घूमने से। जिससे अमृत न मिल सके उसे लेकर क्या करना है।

उससे यही अच्छा है। यहां प्रवेश करना बहुत कठिन है, लेकिन एक बार प्रवेश पत्र पाने पर पूछना ही क्या, उसके बाद तो स्वचालित यंत्र की भांति भाग्य अपना काम किये जायेगा। यहां प्रतियोगिता कम है। तालियों की तौल पर सार्थकता निर्भर है। बंगला नाटक को यहां पर साहित्य के एक अंग की तरह नहीं देखा

जाता है, यह एक प्रकार से रक्षा ही है।

गले में गेंदा के फूलों की माला, पाकेट में नोटों की गड्डी, मनींद्र की सभी समस्यायें सुलझ गयी हैं।

"घर नहीं जाना है ?"

सिर उठाकर मनींद्र ने देखा, चमेली। इसी बीच चेहरे से रंग धो-पोंछकर कपड़े बदलकर तैयार होकर आयी है। आंखों से काजल फिर भी नहीं मिटा है, बिलकुल साफ नहीं हुई है होंठों की लाली।

"मुझे बहुत जोर से नींद आ रही है।" चमेली ने जम्हाई लेते हुए कहा।

"चलो।"

गाड़ी में बदन को फैलाते हुए चमेली ने कहा, "आज मेरा पार्ट कैसा हुआ, बोलिये तो।"

"अच्छा ही तो हुआ, खूब अच्छा।" खिलखिलाकर हंस पड़ी चमेली। "ऊंह, इस प्रकार खाली अच्छा कहने से नहीं चलेगा। और दिनों से बेहतर हुआ है या नहीं बोलना होगा हुजूर। सोच रहे हैं कि जितनी क्लैप पड़ी हैं सब आपके लेखन की तारीफ पर। हम लोग यदि इतनी मेहनत से पार्ट नहीं करते, तब लोग इतने खुश होते, सोचा है ?"

चमेली के हाथों को हलके-से थोड़ा दबाकर मनींद्र ने कहा, "मैंने क्या ऐसा कभी कहा है।"

थोड़ा-सा खिसक गयी चमेली लेकिन हाथ नहीं हटाया, "तब क्रेडिट तो मुझे मिलनी चाहिए कि नहीं, बोलिए।"

मनींद्र ने तब क्या किया, गले में तब तक जो माला लटक रही थी, उसे उतार कर चमेली को पहना दिया, "सब तुम्हारा है। अब हुआ तो।"

जितना खिसक गयी थी चमेली, उतना खिसक आयी। नाखूनों से दो एक पत्तियां नोचते-नोचते बोली, "बेकार। गेंदा के फूलों में सुगंध नहीं है।"

"सुगंध भी है।" कब एक हाथ ने पीठ पर से चमेली को समेट लिया था पता नहीं, मनींद्र ने मुंह के पास मुंह ले जाकर कहा, "सुगंध भी है।...अब देखा ?"

दोनों हाथों से नाक दबाकर चमेली ने खिड़की की ओर मुंह घुमा लिया। "सुगंध नहीं तो कुछ और। आपने आज फिर वह सब पिया है ?"

"थोड़ा-सा।" मनींद्र ने कहा, "जीभ पर एक मोटी सी बूंद, कमल पत्ते पर

छकलती हुई ओस की बूंदें। भाषण देते समय गला न भिगोने पर क्या मन भरता है।"

गाड़ी चमेली के घर के सामने खड़ी हो गयी थी।

"अपने ड्राइवर से कहो न मुझे जरा पहुंचा आएगा।"

दरवाजा खोलकर चमेली नीचे खड़ी थी। बोली, "पहुंचा आएगा। लेकिन इसके पहले आप ऊपर नहीं चलेंगे ?"

"नहीं, बुरी तरह सिर दर्द हो रहा है।"

हाथ की छोटी घड़ी में समय देखकर चमेली ने कहा, "चलिए न, कहां ज्यादा रात हुई है। कुल ग्यारह ही तो बजे हैं।"

ठीक एक गैस के नीचे खड़ी थी चमेली, चेहरे के हिस्से पर प्रकाश पड़ रहा है, और दूसरी ओर छिपा हुआ। ऊपर जाकर बिजली की रोशनी में उसी हिस्से को देखने का लालच ही विजयी हुआ। मनींद्र और कुछ नहीं देख सका। "चलो।"

बटन दबाते ही कमरे में हल्की-सी एक नीली बत्ती जल उठी, धपधप सफेद बिस्तरे पर बदन ढीला छोड़ दिया चमेली ने, पैर दिवाल की ओर उठा लिए, इशारे से मनींद्र को पलंग पर ही बैठने के लिए कहा।

"कुछ बोल नहीं रहे हैं आप, क्या हुआ आपको।"

"प्यास लगी है।" किसी प्रकार कहा मनींद्र ने।

चमेली उठकर बैठी, इस सर्दी की रात में भी पंखा खोल दिया, बोली, "सोडा पियेंगे ?"

"दो," मनींद्र ने कहा। उसके बाद ढक्कन खोलते-खोलते बोला, "सोडा तो केवल साथ के लिए है, दवा कहां है ?"

"दवा भी है।" सिरहाने के नीचे से चाबी निकाली चमेली ने, झूलते-झुलाते आलमारी की ओर चली आयी। लौट आयी हंसते-हंसते, "ये लीजिए। जिसे पीने से सिर दर्द होता है, उसे ही फिर दो बूंद पीने से सिर दर्द खत्म भी हो जाता है, समझे ?"

सिर हिलाया मनींद्र ने, कान के पास झिम्-झिम् करता हुआ एक शब्द ध्वनित हुआ, क्या पता, वह चमेली की चाबी थी कि क्या था। बाथरूम से लौटकर चमेली ने तेज पावर वाली बत्ती जला दी। एकदम बगल में बैठकर बोली, "सिर दर्द कम हुआ।"

मनींद्र ने सिर हिलाया।

"प्यास ?"

"बुझी नहीं।"

टन-टन् करके घड़ी में कितना बजा सुनने लायक मन की अवस्था नहीं थी। पर्दा खिचा खिड़कियों से छनकर अजीब-सी ठंडी हवा आ रही है, इस नर्म सुख शैय्या पर शरीर ढीला कर देने के सुख की तुलना नहीं।

अचानक किसी समय हड़बड़ा कर उठ बैठी चमेली। आंख मलते-मलते बोली, "क्या बात है मनींद्र बाबू ? आप अभी तक यहां हैं ? घर नहीं जायेंगे लगता है ?"

"हां, बस अब जा रहा हूं।" उठकर खड़े होते हुए मनींद्र के दोनों पैर कुछ लड़खड़ा से गये, पलंग की पाटी पकड़कर संभल गया। चमेली भी उठकर खड़ी हो गयी है साथ ही साथ। "और थोड़ी देर बैठिए मनींद्र बाबू। आप से कुछ बातें करनी हैं।"

बैठने पर मनींद्र जैसे बच गया। अकेले-अकेले सीढ़ियां उतरना होगा। अंदाज से दरवाजे की छिटकिनी खोलकर निकलना होगा बाहर। सोचते ही इतनी देर में सिर घूमने लगा था। पर ठीक है थोड़ा बहुत सहारा तो मिला, थोड़ा सा आराम।

कहीं पर कुर्सी पड़ी थी, उसे खींचकर चमेली एकदम मनींद्र के सामने बैठ गयी। बोली, "आपके नाटक पर फिल्म भी बनायी जा रही है न ?"

"कहां, मैं तो कुछ जानता नहीं।"

"नहीं जानते ? और नखरा मत दिखाइये सब जानते हैं, बोल नहीं रहे हैं। मैं सब जानती हूं। दो हजार रुपये, कंट्रैक्ट तैयार है, केवल साइन करना बाकी है।"

मनींद्र ने क्या किया, चमेली का एक हाथ पकड़ लिया। "तुम्हें छूकर कह रहा हूं चमेली, मैं यह सब कुछ नहीं जानता हूं।"

हाथ छुड़ा लिया चमेली ने। गंभीर आवाज में बोली, "सुनिये तब। पापुलार आर्ट्स फिल्म कंपनी के मालिक आज आये थे थियेटर में। इसके पहले भी दो-एक बार नाटक देख गये हैं। इस नाटक पर उनकी गहरी नजर है। हो सकता है जल्दी ही आपके पास आयें। आप लेकिन सस्ते में मत छोड़ियेगा। समझे ?"

"नहीं छोड़ूंगा।"

अनमने मन से ही जूड़ा खोल दिया चमेली ने, बालों के गुच्छे को अलसभाव से छाती के पास लाकर खेलने लगी। बोली, "आपको केवल यह खबर सुनाने के

लिए नहीं लायी हूं मनींद्र बाबू। मेरा खुद का भी एक इंटरेस्ट है। नाटक में जैसे हूं, वैसे ही सिनेमा में इस फिल्म की हिरोइन बनना चाहती हूं। ये काम आपको करना होगा।"

बहुत देर तक बैठे रहने से मनींद्र का गला फिर से सूखने लगा था। सिर दर्द शुरू हो गया था। इशारा समझते ही चमेली ने फिर उठकर आलमारी खोली, सोडे की बोतल खोल दी। "बोलिए कर सकेंगे कि नहीं।"

"मैं कैसे कह सकता हूं। जो मालिक हैं, पसंद-नापसंद का अखित्यार तो उनका ही है, चमेली।"

अचानक दोनों आंखें सिकुड़ गयीं चमेली की, दोनों भौहें नाक के ठीक ऊपर आकर जैसे मिल गयी हों, "समझ गयी हूं मनींद्र बाबू। काम खत्म होने पर आदमी कुछ याद नहीं रखता है। अभी उसी दिन आप किताब बगल में लेकर दर-दर घूम रहे थे, आज तो बड़े नाटककार हो गये हैं। लेकिन आपके नाटक को जीवन दिया किसने? प्रत्येक शब्द को अच्छी तरह चमकाकर, सुंदर ढंग से किसने कहा? सोचते हैं कि लोग केवल आपके नाटक देखने ही आते हैं। तब तो वे खरीद कर भी पढ़ सकते थे। बात वैसी नहीं हैं मनींद्रबाबू, वे लोग हमें देखने आते हैं।"

"जानता हूं चमेली।"

अनावृत्त दोनों हाथों को पीछे की तरफ ले जाकर चमेली ने खुले जूड़े को फिर से बांधा। "मानते हैं जब, तब समझिए इतना मर-खप कर एक चीज तैयार कर खड़ी की हम लोगों ने, और आज सब कुछ किया कराया चुराकर ले जायेगा—कोई दूसरा? ऐसा नहीं होता है, मनींद्र बाबू," चमेली ने अचानक जोर देते हुए कहा, "फिल्म में भी इस नाटक की हीरोइन का पार्ट मैं करूंगी, नहीं तो आप क्या सोचते हैं, आप एक अनाम लेखक से नाट्यकार, नाट्यकार से सिनेमा की मार्फत भारत प्रसिद्ध होते जायंगे, और हम लोग जहां हैं वहीं पड़े रहेंगे। जिंदगी भर लकड़ी के स्टेज पर पैर ठोकते रहेंगे, पर्दे पर नहीं आयेंगे? हम लोगों में भी आशा आकांक्षा जैसा कोई पदार्थ है मनींद्र बाबू।"

ग्लास को पूरी तरह खाली कर मनींद्र ने कहा, "वह तो है ही।"

"झूठ मूठ की हामी मत भरिये। जो है वह आप कितना समझते हैं। नहीं तो जो नंदन बाबू मेरे यहां सप्ताह में तीन दिन आते हैं, वे अपनी फिल्म की नायिका के लिए एक सोसायटी गर्ल खोजते हुए नहीं फिरते।"

"नंदन बाबू कौन ?"

"वही, पापुलर फिल्म के प्रोड्यूसर की बात कह रही हूं। मुझे इस फिल्म की हीरोइन का पार्ट देंगे कहकर अब वे अच्छे घर की लड़की के लिए अखबार में विज्ञापन दे रहे हैं तो खबर भी मिली है।"

"चालाकी और किसे कहते हैं। बनावटी एक रेसपेक्टिबिलिटी···"मनींद्र फिर अपनी सहमती देने जा रहा था, चमेली अनसुना कर बोलती चली गयी, "वे लोग अभिनय जानती है, समझती हैं ? सिच्युएशन पर हंसना जानती हैं, रोना जानती हैं। चेहरे की एक रेखा बदलने में तो पसीने-पसीने हो जाती हैं। और रूप ? उस बात को न ही उठाया जाये। दिन रात तो देखते हैं। उन लोगों ने जो विज्ञापन दिया, उसकी जो दरखास्त आयी हैं, उन्हें देखियेगा ? उन लोगों का ही पब्लिसिटि असिसटेंट अमिय नाम का एक लड़का मुझे दे गया है फोटो। देख लीजिए एक बार अपने अच्छे परिवार की लड़कियों का नमूना। मर जाऊं, मर जाऊं।"

टेबल की दराज से एक लिफाफा निकाला चमेली ने, उसके बाद हाथ के सभी पत्तों को चित्त करने की भंगिमा से सब फोटो को फेंक दिया टेबल के ऊपर। "ये देखिये, साधारण-सी एक तस्वीर उतरने में जिनका चेहरा रोने-रोने जैसा हो जाता है, उनका प्ले करने का शौक तो देखिये एक बार। ये क्या, आपको क्या हुआ, ऐसे क्यों कर रहे हैं आप।"

सामने की दीवार के शीशे की ओर मनींद्र की नजर नहीं थी, नहीं तो अपना चेहरा देखकर खुद ही चौंके जाता। बिखरे हुए बाल, थोड़ी देर पहले ही दोनों कनपटियां हल्की-सी लाल हो गयी थीं, अभी एकदम सफेद हो गयी हैं। विह्वल, खोई हुई आंखों को देखकर चमेली होंठ दबाकर हंसी, मनींद्र की पुतलियां फास्फोरस की तरह चमक रही हैं, दो घूंट में ही इतना। बोली, "यही देखकर शायद सिर चकरा गया। इतनी-सी पी लीजिये, अच्छा हो जायेगा।"

चमेली फिर से सोड़ा खोलने जा रही थी, मनींद्र ने इशारे से मना किया। कुर्सी के हत्थे को पकड़कर खड़े होकर सूखे गले से कहा, "एक ग्लास पानी पिऊंगा।"

"लाती हूं, ठहरिए।"

पानी लाने जाने में और लौटकर आने में जितना वक्त लगा चमेली को, मनींद्र ने उसी बीच टेबल पर से एक फोटो लिया, ऊपर की पाकेट में रख लिया सावधानी

से। चमेली ने पानी का ग्लास उसके हाथ में देकर कहा, "देख लिया तो इन्हें, और मुझे तो रोज ही देखते हैं। बोलिये, इन लोगों से अच्छा पार्ट कर सकूंगी या नहीं। आपकी किताब है, आपके थोड़ा जोर देने पर क्या वे आपकी बात नहीं मानेंगे।"

लौटते समय चमेली ड्राइवर को बुलाकर गाड़ी बाहर निकालने के लिए कह रही थी, मनींद्र ने कहा कि जरूरत नहीं है। नशा उतर गया है उसका। एक टैक्सी वह खुद ही बुला लेगा। आधी रात की ठंडी हवा का झोंका आंखों को बुरा नहीं लगेगा।

गैस की रोशनी के नीचे खड़े होकर मनींद्र ने और एक बार फोटो निकाली। दांत से दांत लगे जा रहे हैं, क्या केवल ठंड से। एक कड़वी हंसी से चेहरा एकदम विकृत हो उठा। खुद के नशे से कुछ भी समझ में नहीं आता। दूसरे किसी नशाखोर से सामना होने पर समझ में आता है उसका रूप। मनींद्र के जीवन की समस्त, नीचता, ओछापन, जैसे हथेली के एक प्रकाशित चित्र पर प्रतिफलित हो गयी है।

उस दिन कीनू ग्वाले की गली के ठीक मुहाने पर कमोवेश रात के अंतिम समय दो तरफ से दो टैक्सी आकर रुकीं। भाड़ा चुकाकर मनींद्र लड़खड़ाते कदमों से चल रहा था, पीछे भी कोई आ रहा है पता नहीं चल सका। निर्जन रात, पैरों के जूतों से ठोकर खाये हुए पीछे की खस-खस आवाज जर्जर मकानों की दीवारों से चोट खाकर गिरी पड़ी है उसके पैरों के पास ही।

पीछे की छायाकृति तब तक स्पष्ट होकर आगे बढ़ आयी है। ठिठक कर खड़ा हो गया मनींद्र, पीछे मुड़कर देखा। इतनी सतर्कता से पीछे की छायाकृति अपना चेहरा ढक लेगी इसका कोई उपाय नहीं है।

"तुम ?"

"मैं ही हूं। लेकिन तुम इतनी रात को कहां गयीं थीं शांति ?"

जवाब देने में शांति की आवाज जकड़ गयी। कोई कठोर बात कहने के लिए तैयार हो रहा था मनींद्र, लेकिन प्राणहीन एक हंसी निकल गयी। शांति की पीठ पर हल्के से दो बार चपत लगाकर बोला, "रहने दो, बहाना नहीं करना होगा। मैं जानता हूं।"

गैस की रोशनी के नीचे शांति के चेहरे को ऊंचा उठाकर मनींद्र ने कहा, "लेकिन चमेली ने केवल तुम्हारा फोटो ही देखा था, रक्त मांस की औरत को नहीं देखा।

इसीलिए तुम्हारी अभिनय कुशलता पर शक कर रही थी। आज, इस क्षण, इस अवस्था में तुम्हें देखने पर अपना विचार बदल देती। शर्म, भय, घृणा, अभिमान, क्षोभ—सब कुछ के इतने मिले जुले रूप में अभिनय मात्र एक चेहरे पर करने में चमेली की तरह स्टेज ऐक्ट्रेस को सात जन्म लग जायेंगे लेकिन तुम सिनेमा की तारिका होने के लिए उम्मीदवार बनकर क्यों गयी थीं शांति ? ना-ना-ना माफी-वाफी नहीं।" शांति को दोनों हाथों से उठाकर मनींद्र ने कहा, "आज सारी शाम नाटक देखा है, चमेली के घर में भी इतनी देर तक नाटक बुरा नहीं हुआ, फिर यहां, इस ढलती रात में रास्ते के बीचों-बीच खड़े होकर प्ले करने का या देखने का शोक नहीं है मुझे, देख रही हो न, अच्छी तरह से खड़ा तक नहीं हो पा रहा हूं, शब्द अस्पष्ट होते जा रहे हैं ? चलो, घर चला जाये।"

दो कदम आगे बढ़कर फिर खड़ा हो गया मनींद्र, "अलावा इसके कौन किसकी कैफियत करेगा बोलो। तुम मेरी या मैं तुम्हारी। कसूर तो मेरा भी कम नहीं है शांति। कहते-कहते मनींद्र शांति के कान के पास मुंह ले आया। इससे अच्छा है चलो, हम लोग यहां से भाग जायें। हमेशा तो हम लोग ऐसे नहीं थे न ? समझ लो यहां आने के पहले ? अभाव पहले भी था, लेकिन इस प्रकार दो लोगों को अलग कर दो रास्तों पर ले जाकर अंत में घुमा-फिरा कर एक ही रास्ते पर आमने-सामने खड़ा नहीं कर दिया। इस गली ने हम लोगों को खत्म कर दिया है शांति। यहां आकाश नहीं है, सहज तरीके से जिंदा रहने का उपाय नहीं है। इस आब-हवा में हम लोगों की परेशानी, काम सब कुछ बीमार हो गया है। जिंदा रहने के लिए इस गली को छोड़ना पड़ेगा। हवा बादल के अलावा इस क्षय रोग का इलाज नहीं है।"

उन लोगों के चले जाने पर रास्ते के किनारे की एक खिड़की का दरवाजा सावधानी से बंद हो गया। अंधेरे प्रेक्षाग्रह के इस एकांत दृश्य के एक मात्र दर्शक के मुंह पर थोड़ी-सी हंसी खेल गयी।

ये लोग भी जायेंगे तब, जाने दो। एक-एक घरौंदे में कबूतर लाकर जिन्होंने पाला था, वे ही अब एक-एक करके उड़ाये दे रहे हैं सब, कभी-कभी जोड़े में। उड़ाने दीजिये। जिनका पक्षी है वे उड़ायेंगे, कीनू ग्वाले की गली के साधारण से स्वर्ण मनिकार को कुछ बोलना नहीं है। वह केवल देखता ही जायेगा।

18

इतने दिन गुजर गये इस गली में, फिर भी नीला अभी तक कभी-कभी अपने को प्रवासी समझती है। ऐसा क्या नहीं हो सकता है, यहां का सब कुछ सपना हो ? ऐसी तो कितनी ही कहानियां पढ़ी हैं, कितने नायक नायिकाओं के भाग्य में घटी है यही विचित्र-सी घटना। साल के बाद साल गुजरे जंगलों में, पर्वत की गुफाओं में या घू-घू करते हुए रेगिस्तान में, इसके बाद कभी अचानक नींद खुलने पर देखा है सब खाली, सब झूठ, कुछ नहीं घटा, साल तो दूर की बात है, घंटे-भर से अधिक नींद नहीं हुई है।

नीला के साथ भी तो ऐसा हो सकता है। कीनू ग्वाले की गली में सोकर सुबह होगी पापुलर पार्क में। पक्षी की छाती के समान नरम बिस्तर में सोई है। इस गली में जितना धुंआं धूल भरा है, सब स्वप्न में दिखा था, खत्म हो गया स्वप्न में ही। इस गली के जितने लोग हैं वे भी सब खत्म हो गये हैं। प्रमथ पोद्दार, शांति, मनींद्र, सेवासत्र की कुछ लड़कियां, इंद्रजीत। इन्हें केवल एक दुःस्वप्न में देखा है नीला ने, वास्तव में ये लोग कभी भी उसके जीवन में नहीं आये।

बिस्तर में लेटे-लेटे ही आलस टूटेगा। जम्हाई लेकर हाथ बढ़ा देगी बगल में रखे टेलीफोन की ओर, भाभी के मैके को उसे खबर देनी होगी।

"भाभी को शाम के इंगेजमेंट की बात भूलना नहीं। क्या कहा, समय नहीं है। बाहर, अच्छी आदमी हो तुम तो। जबान देकर अब · । बहुत वह हो। इधर मनन ठीक तीन बजे गाड़ी लेकर आयेगा। तुम्हारे नहीं जाने से उसे अपने मन में बहुत दुख होगा। क्या कहा, दुख नहीं होगा, खुश होगा मन ही मन ? कभी भी ऐसा मजाक मत करना कहे देती हूं भाभी, अच्छा नहीं होगा।"

लेकिन कीनू ग्वाले की गली तो सपना नहीं है, असल में पापुलर पार्क ही सपना है, फिर भी कभी नींद में चला आता है, लेकिन पापुलर पार्क नीला के इस जीवन में अब कभी नहीं आयेगा। चोटी झुलाती स्कूल जाती सुबह जैसे हमेशा के लिए खत्म हो गयी है, उसी प्रकार खत्म हो गया है मनन, सौम्य, मनीश का साथ, आसनसोल में मोटरगाड़ी की गोधूलि बेला। नीला की स्मृति में अब यह लोग एक परछाई की तरह हैं, कृष्णपक्ष की रात में घने जंगल के छोर को पार करते हुए ट्रेन की खिड़की से दिखायी पड़ने वाले पंक्तिबद्ध तार के खंभों के एक के बाद

एक क्रमशः गुजरते जाने की तरह, अस्पष्ट।

लेकिन शांति दी ? प्रमथ पोद्दार, शकुंतला, इंद्रजीत--ये लोग क्या कभी जा सकते हैं नीला के जीवन से ? विश्वास नहीं होता है।

इंद्रजीत के दरवाजे पर हल्के हाथों से दो बार थाप दी नीला ने। कमरे में ही है।

"आओ।" इंद्रजीत कुछ लिख रहा था, चेहरा उठाकर मुस्कराते हुए स्वागत किया, "कालेज से कब लौटीं ?"

दरवाजा धीरे-धीरे अंदर से बंद कर दिया नीला ने, "गयी ही नहीं। कालेज के खाते से मेरा नाम कट गया है।"

"गाने के स्कूल से ?"

"वहां भी नहीं। जानते नहीं हो, मासिकवृत्ति बंद हो गयी है।"

बनावटी हंसी से इंद्रजीत का चेहरा भर गया। "अच्छा ही हुआ। मेरी भी पढ़ायी लिखायी बंद हो गयी, तुम्हारी भी हो गयी।"

नीला की उत्सुक आंखों के लक्ष्य को देखकर इंद्रजीत टेबिल पर से एक चिट्ठी उठाकर बोला, "बाबूजी ने लिखा है। अभी तंगी है, प्रैक्टिस चल नहीं रही है, बेकार लड़के को कलकत्ते में रहने लायक टैक्स अदा नहीं कर पायेंगे। जल्दी ही मुझे कुछ काम खोजने के लिए कहा है।"

थोड़ा-सा रुककर फिर कहा, "बाबूजी को दोष नहीं देता हूं, लेकिन मैं क्या करूं अब ! भाग्य पुरुष ने छठी के दिन भाग्य में जो लिख दिया है, भाग्य में वही बदा है सोचकर इतने दिनों तक निश्चित होकर बैठा था, अब देखता हूं कि उसी लिखे को मिटाने में भी कम से कम भाग दौड़ तो करना होगा।साहित्यिक भाषा में जिसे कहते हैं जीवन संग्राम। बात सुनने में बड़ी ही शानदार है, लेकिन इसका रूप बहुत ही घिनौना है नीला, इसका मतलब हुआ कि जगह-जगह एक उम्मीदवारी, दरखास्त का लौटना, निहायत अयोग्य लोगों के सामने सिर झुकाना, बिखरते बाल, सूखा चेहरा, चिपटा पेट, और फेहरिस्त सुनोगी ?

नीला की गोद में सिर रखकर लेट गया था इंद्रजीत। आंखों पर दाबकर रखा था तेज रक्त प्रवाहित एक हाथ। धीरे से उसी हाथ को इंद्रजीत खींच लाया नासा-पुटों के पास, जहां से हल्की-सी निश्वास निकल रही है, इसके बाद खींच लिया और भी सामने, सिक्त दो होंठों पर बहुत देर तक रखकर कहा, "क्या है शांति ?"

कैसी एक निगूढ़ परितृप्ति थी उन शब्दों के उच्चारण में, नीला की छाती से पैर के नाखूनों तक एक सर्पीली सिहरन दौड़ गयी। कोई भूली हुई बात अचानक याद आ गयी हो इस तरह चौंक उठी, साथ ही साथ बोली, "सुना कि शांति दी चली जा रही हैं।"

इंद्रजीत ने आखें खोलकर देखा। "ऐसा है क्या। कहां, मैंने तो कुछ सुना नहीं। एक मुश्किल और बढ़ गयी तब तो। शांति ने इतने दिन तक 'मील' (खाना) नहीं बंद किया था, अब फिर से होटल में जाकर धरना देना होगा।"

इंद्रजीत की आवाज में ठंडापन छोड़कर और कुछ नहीं था, फिर धीरे-धीरे हाथ खींच लिया। आवाज में कुछ भी रहे, इंद्रजीत का चेहरा भी उतर गया है, वह तो नीला को दिखायी दे गया है। केवल होटल में खाने की बात से इतना उदास हो जाता है कोई, नहीं ऐसा नहीं हो सकता है।

"मैं जा रही हूं," बोली धीरे-धीरे। "ऊपर मां की तबीयत ठीक नहीं है। अकेली हैं।"

यह बात इंद्रजीत के कानों तक पहुंची कि नहीं, इसमें संदेह है। पूछा, "वे लोग कब जायेंगे जानती हो ?"

"आजकल में ही शायद। ठीक नहीं कह सकती। लेकिन शांति दी को सामान वगैरह ठीक-ठाक करते देखा है।" इंद्रजीत का सिर नीचे रखकर नीला धीरे-धीरे खड़ी हो गयी। दरवाजे तक जाकर फिर पीछे मुड़कर देखा एक बार। इंद्रजीत बिना हलचल के लेटा है। नीला ने बाहर निकलकर दरवाजा बंद कर दिया।

वैसे ही आंखें बंद किये रहा इंद्रजीत, करीब आधे घंटे बाद खोलीं। दरवाजा बाहर से किसी ने खोला था, जंग लगे कब्जे ने हल्की सी आवाज की। इंद्रजीत समझ गया था कि कमरे में कोई आया है, पूछा, "कौन ?"

अचानक किसी ने बुझी-बुझी-सी लालटेन की लौ को तेज कर दिया। तुरंत खुली आंखों में जलन होने लगी। इंद्रजीत ने सिर उठाकर देखा, शांति।

प्रथम सूर्योदय के रंग की तरह माथे पर गहरी बिंदी पर हल्की नीली साड़ी के घूंघट का आकाश फैला हुआ था, दोनों आंखों की पुतलियों में तेजी से शेष होती हुई रात की कालिमा का अवशेष। इंद्रजीत मुग्ध होकर देखता रहा।

समूचे अस्तित्व में एक खलबली मच गयी, डर, प्यार, अभिमान सब पहली बारिश के ज्वार की तरह हृदय के कोने में, अंगों में, शरीर के रोम-रोम में भर गया है।

यह तो फिर भी सामीप्य है, स्पर्श नहीं है। कुछ देर पहले भी तो कोई था उसे अपने में समेटे हुए, उसके हाथों से खिलवाड़ भी किया था इंद्रजीत ने रखा था खुले केशों को, ज्वर से सूखे कपोलों पर, प्यास से जलते हुए होंठों पर। लेकिन तब तो पूरी चाहना के साथ ऐसा आलोड़न नहीं हुआ, नम, शांत, सजल एक अनुभूति से शरीर भर गया था।

लेकिन जिस क्षण शांति आयी, अचानक उकसाई गयी उस लालटेन की लौ से आलोकित क्षण के साथ उसकी थोड़ी सी भी तुलना की जा सकती है। सब गड़बड़ा गया, सूखी घास का ढेर जैसे अचानक आग में जल उठा हो, लहर के बाद लहर आकर अस्तव्यस्त किये दे रही है चैतन्य को। सिर उठाकर देखने की फुर्सत नहीं है, यह लहर थम जायेगी जब, छोड़ जायेगी एक नमकीन स्वाद, रोमांचित स्वेद।

इंद्रजीत भूल गया कि शांति बहुत दिनों से उसके कमरे में नहीं आयी थी, शांति न उसे एक छोटे बच्चे से ज्यादा नहीं समझती है, शांति ने उसे निष्ठुर होकर रस विशेष बर्तन की तरह फेंक दिया है। कहा, "बहुत दिनों बाद आयी।"

"बहुत दिनों बाद, बोली शांति," इंद्रजीत की आवाज में बातें बिखरी-बिखरी-सी सुनाई दी थीं, शांति की आवाज में खनखना उठीं।

"सुना, कि तुम लोग चले जा रहे हो।"

"जा रही हूं।" शांति ने कहा, "वही तुम्हें कहने आयी हूं। तुम भी तो चलोगे।"

"ना, मैं कहां जाऊंगा अब।"

शांति हंस उठी। "समझ गयी, यह मकान तुम छोड़ना नहीं चाहते हो। कीनू ग्वाले की गली का यह अंधेरा कमरा क्या तुम्हें इतना अच्छा लगा है इंद्रजीत।"

"अच्छा नहीं लगा। तुम्हारे साथ बहस नहीं करना चाहता हूं शांति। लेकिन अच्छा नहीं लगने पर हम लोग बात कुछ मान लेते हैं। कीनू ग्वाले की गली को भी मैंने वैसे ही मान लिया है।"

थोड़ा-सा रुककर इंद्रजीत ने फिर कहा, "फिर तुम्हारे पीछे-पीछे मैं कहां जाऊंगा। तुमने शायद मकान लिया है दक्षिण की ओर एक साफ सुथरे, एकांत कोने में, लब्ध प्रतिष्ठित कीर्तिमान पति, खुली स्वतंत्रता। वहां पर भी यदि साथ-साथ चिपटा रहूं शांति, तो वह किसी को भी अच्छा नहीं लगेगा। अनाधिकार प्रवेश की तरह लगेगा। मैं तो केवल तुम्हारा अतीत हूं, शांति। तुम्हें केवल इस गली के जीवन की बातों को याद दिला देगा, जब तुम्हारे आंचल या कैशबक्स में

एक भी रुपया नहीं रहता था, मुझे देखते ही तुम्हें बाजी रखकर तरह खेलने की ही बात याद रहेगी।"

शांति हंसी, "ऐसा है तब मत जाना। मैंने लेकिन इतना सोच विचार कर नहीं कहा था इंद्रजीत। एक बड़ा-सा मकान ठीक हुआ था, दस बारह कमरे, एक कमरा लेकर तुम मन मुताबिक रह सकते थे, बच सकते थे। यहां तुम भी तो मरे जा रहे हो इंद्रजीत, इस गंदे, कम रोशनी और हवा के बीच निरंतर बंदी, इसे तो जिंदा रहना नहीं कहते हैं।"

"मैं जिंदा रहना भी नहीं चाहता हूं।" इंद्रजीत ने आंखें मींच कर कहा।

बहुत देर बाद जब आंखें खोलीं, शांति चली गयी थी, जाते समय अच्छी तरह दरवाजा भी नहीं बंद कर गयी बजबजाती हुई आंगन की नाली से गंदी सिहरन भरी दुर्गंध आ रही है। किसी कमरे में चूल्हा सुलगाया है किसी ने, कोयले के धुंएं से सारा कमरा भर गया है।

समूचा मन विषाक्त हो गया इंद्रजीत का। यही तो है शांति। अच्छा ही हुआ चली गयी। कितनी घमंडी। कितनी भीतर से खोखली। अचानक इंद्रजीत ने जाना, शांति से वह घृणा करता है। उसका उठना बैठना, बातचीत करना, सब कुछ एक व्यंग्य विकृत रूप जैसा आंखों के सामने बहने लगा।

कितना स्थूल, कितना रुचि विहीन। इसी रुपये के लाभे के स्वप्न में मग्न लड़के ने उसे केवल ठगा है। इंद्रजीत के लिए जिसके मन में रत्ती भर भी करुणा नहीं है, उसे वह अंत में घृणा कर सका है, यह बात सोचते में ही उसके हृदय की बहुत-सी जलन शांत हो गयी।

कल ही वे लोग चले जायेंगे। बच गया, कि इतने सस्ते में ही झंझट खत्म हो गया। शांति ने उसे छोड़ दिया है लेकिन वह निराश्रित नहीं है। नीला है। आह, यह बात यदि शांति के मुंह पर कह पाता तो। नीला और शांति। किससे किसकी तुलना। गहरी अनुभूति से इंद्रजीत का मन भर गया। नीला ने उसे बचाया है। इस अकेली सी लड़की की ममतामयी आंखों की तुलना नहीं है। नीला से वह इतना प्यार करता है, शांति से घृणा करता है, यह बात इतने दिनों तक वह क्यों नहीं जान सका। नीला को पाकर ही इंद्रजीत जी उठेगा। कुछ भी हारा नहीं है, कुछ भी खोया नहीं है, अभी भी असमाप्त भविष्य सामने है।

उठकर इंद्रजीत दरवाजा बंद करने गया। शांति के कमरे के दरवाजों की दरार

से आयी तेज एक किरण चाकू की तरह लग रही है आंखों को। कमरे के भीतर से बक्स खींचने की आवाज। शायद उन लोगों के जाने की तैयारी पूरी हो गयी है।

आज जिस कमरे में इतनी आवाज, इतना प्रकाश है, कल वह कमरा खाली हो जायेगा, सोचते ही इंद्रजीत का मन बुझ गया। कल इस वक्त वह कमरा अंधेरा रहेगा, एक हल्की-सी भी आवाज नहीं रहेगी, कब्र की तरह निशब्द गूंगे माहौल में अकेले इस कमरे में कैसे रहेगा सोचते ही बदन कांप उठा। इधर पिछले कुछ दिनों से जरूर कोई विशेष संबंध नहीं था उन लोगों के साथ, ठीक वक्त पर खाना आ जाता, इसके अलावा वे लोग कब आते-जाते हैं पता भी नहीं चल पाता इंद्रजीत को। आंखों के सामने नहीं पड़ते फिर भी हैं, यह ज्ञान था। शांति के होने का भाव था।

अच्छा ही हुआ, अब कल यह भाव भी नहीं रहेगा। बिलकुल नया, धुली जमीन पर नयी अल्पना। फिर भी वैसा ही उत्साह कहां होता है। जिसे देख नहीं सकता, जिसका चलना-बैठना-बोलना रुचिहीन लगता है, उसी से तुरंत अलगाव की कल्पना ही इतना उदास कर देती है क्यों।

अचानक हल्की सी हवा से उनका दरवाजा थोड़ा खुल गया, वही रोशनी की किरण सौ गुना तेज होकर इंद्रजीत की आंखों और चेहरे पर चमक कर पड़ी। दरवाजे के सामने हल्के रंग का वही पर्दा, इंद्रजीत जानता है, वह शांति की ही एक पुरानी साड़ी का है।

उसी पर्दे के पीछे छोटे पैरों से शांति चल फिर रही है, रक्त मांस की नहीं, एक परछाईं की तरह। बक्स खींच रही है, कपड़ा धर-उठा रही है, चाबी का रिंग या चूड़ी बज रही है। इंद्रजीत सम्मोहित-सा देखने लगा।

शांति से वह अब भी प्यार करता है। किसी को न चाहते हुए भी प्यार किया जा सकता है, इंद्रजीत ने पहले पहल जाना।

बहुत रात में और एक बार दरवाजा किसी ने सावधानी से खोला। इंद्रजीत जानता है कि कौन है। यह आते ही लालटेन की बत्ती तेज नहीं कर देती, इसके आंचल में न चाबी का रिंग है, न हैं पतले हाथों में बजने लायक चूड़ियां। दबे पैरों से आती है। अनुमान,...केवल अनुमान से ही बिस्तर कहां है पता लगाती है, बिलकुल किनारे आकर खड़ी होती है। इंद्रजीत जानता है कि कौन है।

दोनों हाथों का आसरा देकर उसे अपने से बांधकर इंद्रजीत पास खींच लाया। कान के पास मुंह झुका कर बोला, "शांति आयी थी। तुमने ठीक ही कहा था, वे लोग कल चले जायेंगे। दस बारह कमरे, सुना गयी। उसे जाने दो। तुम रहो।"

19

दूसरे दिन इंद्रजीत की बहुत देर में आंख खुली। बचपन में बहुत बार ऐसा होता था। सारी रात यात्रा देखकर गयी रात में लौटकर पूरी सुबह सोता। नींद खुलने पर भी देखता, पूरे शरीर हाथ पैर में दर्द ही दर्द, आंख मुंह हल्का हल्का लाल, फूला हुआ, आलस गया नहीं।

आज भी वैसा ही लग रहा है। कल पूरी रात किसी ने इस कमरे में आवाजही की है, अभी केवल सपने की तरह लग रहा है। तकिये पर, इंद्रजीत के ही तकिये पर, मीठी सी एक तेल की सुगंध छिपी हैं, यह तेल इंद्रजीत कभी नहीं लगाता है। लंबा सा एक बाल, इतना लंबा बाल इंद्रजीत का नहीं है। और छोटी-सी एक बिंदी, अस्त होते हुए चांद की तरह तकिये से फिसल कर चादर पर पड़ी है। हल्की उंगलियों से इंद्रजीत ने उसे उठा लिया, कौतूहल वश आंखों के सामने लाकर देखने लगा।

ये बिंदी जिसकी है, रात के अंतिम समय वह बिस्तर से पैर दबाकर उठ गयी थी, सावधान हाथों से खोली थी सिरहाने की खिड़की, एक ठंडी हवा के झोंके से और सबेरे की रोशनी से कमरा भर उठा था। इसी गली में यही एक आश्चर्य की बात है, चारों ओर इतनी कड़ाई, निषेधों की दीवार, फिर भी हवा रोशनी का टपक जाने का व्यापार चल रहा है। ठीक फुर्सत मिलने पर हवा भीतर आती है, दरार देखते ही रोशनी आ टपकती है। उसके बाद से इतनी देर तक इंद्रजीत मग्न होकर सोया है। सिरहाने की खिड़की जिसने खोली थी, हाथ बढ़ाकर उसके आंचल को पकड़ने की कोशिश की थी याद पड़ रहा है, लेकिन नींद से भरा हाथ, पकड़ नहीं सका।

सुराही में पानी था, नाली के सामने जाकर इंद्रजीत ने आंखों पर पानी के छींटे दिये। इसके बाद दाढ़ी बनाकर तैयार हुआ। एक बार बाहर जाना होगा। कितना वक्त है अभी, दस-ग्यारह ! सारे घर में परछाई ही परछाई, हल्की रोशनी में दिन की उम्र नहीं ठहरायी जा सकती।

बाहर निकल कर, सीढ़ी के कोने में, सामने के दरवाजे की ओर देखते ही इंद्रजीत की दृष्टि ठहर गयी। बाहर से सांकल चढ़ायी हुई, सांकल पर एक ताला लटक रहा है।

वे लोग तब चले गये हैं।

अंत तक वे लोग जायेंगे नहीं, हो सकता है शांति का विचार बदल जायेगा ही, मन ही मन ऐसी हल्की सी आशा किये बैठा है, यह इंद्रजीत अभी जान पाया। दोनों आंखें जल उठीं। इतनी नीच, इतनी स्वार्थी है शांति ? चोर की तरह भाग गयी, जाते वक्त एक बार कहकर भी नहीं गयी इंद्रजीत से ? मन ही मन एक अदम्य अभिमान उद्वेलित हो उठा जैसे, शांति चली गयी है यह कोई विशेष बात नहीं है, जाते समय बोलकर जाने से ही इंद्रजीत को कोई मलाल नहीं रहता।

कोई कारण नहीं, फिर भी लोभ हुआ, एक बार बढ़े झांक कर देखे, क्या है अंदर। अपने कमरे में ताला लगाया इंद्रजीत ने।

खट् से एक आवाज हुई, शायद हवा है। अभी दुपहर है कहीं से ढेर से पत्ते उड़ते-उड़ते आ गिरे आंगन में। सांकल चढ़ी, फिर भी शांति का दरवाजा सामने से थोड़ा खुल गया। इंद्रजीत ने देखा अंदर अंधेरा।

अंधेरा। सभी संबंधों की गहराई का, सभी परिचय की गंभीरता का यही अंत है। जो कमरा किसी दिन इतना प्रिय था इंद्रजीत को, जाते वक्त शांति उसे अंधेरे से भर गयी है, सांकल लगाकर लटका गयी है ताला, मजबूत लोह के अक्षरों से, लकड़ी के फलक पर लिखा—एपिटाफ।

और एक बार हिल उठा लकड़ी का दरवाजा, चौखट के भीतर से एक चूहा सिर निकाल कर बाहर निकलने की कोशिश कर रहा है। रोंये-रोंये में एक तेज घृणा सरसराती हुई निकल पड़ी। धीरे-धीरे खिसक कर इंद्रजीत ने बाहर के रास्ते पर पैर रखा।

आघात के प्रथम क्षणों में इंद्रजीत विह्वल हो गया। मुष्टि युद्ध में औंधे गिर जाने की तरह। केवल शारीरिक यंत्रणा ही नहीं, मानसिक अपमान बोध भी।

उद्देश्य हीन होकर उस दिन रास्ते-रास्ते, अकेले-अकेले कितना भटका था कोई ठिकाना नहीं। पार्क में आकर बैठा था बहुत देर तक। कुछ सोच नहीं रहा है, सोचने की इच्छा भी नहीं कर रही है, फिर भी सिर भारी हो गया है। चुपचाप बैठने में भी अच्छा नहीं लग रहा है, फिर भी इससे क्या अच्छा लगेगा, वह भी जाना हुआ नहीं है। एक-एक कर मूंगफली, जूता पालिश, सिर मालिशवाला इस ओर देखते-देखते चले गये, इंद्रजीत का मन हुआ कि सभी को बुलाये, लेकिन अंत तक किसी को भी नहीं बुलाया जा सका। ढेर सारी चींटियां उसके चारों ओर प्रदक्षिणा कर एक पेड़ के तने की ओर जुलूस बनाकर चल रही हैं, और कोई समय होता तो इंद्रजीत सरक कर बैठ जाता, इस समय केवल अपलक उदास आंखों से देखने को मन कर रहा है। सिर पर टप से कुछ गिरा, इंद्रजीत ने सिर उठाकर देखा एक हड्डी का टुकड़ा, चील कौवों की अस्थिर चोंच से गिर पड़ा होगा।

दिन बढ़ आया। सूर्य की रोशनी अब एकदम सामने है। लोगों की भीड़ बढ़ रही है। एक दो, एक दो करके आ रहे हैं भीतर, सब मिलाकर कितने लोग आये एक बार गिनने की कोशिश की इंद्रजीत ने, गिन नहीं सका। सब लोग जैसे मिल जाते हैं, एक ही आदमी गिना जाता है बार-बार। कितने लोग तो बार-बार लौट-कर आ रहे हैं इसमें संदेह नहीं। पार्क का चक्कर लगा रहे हैं शायद। स्वास्थ्य लाभ करने आये प्रौढ़ शानदार तरीके से बैठे हैं बेंच की कतारों में, कम उम्र के लड़के खेल का स्वांग करते हुए बल आजमाइश कर चले भी गये। गैस बत्ती जलाकर अंडे की तरकारी, घुघनी वाला अपनी दुकान सजाकर बैठा है, थोड़ी दूर पर कुछ एक कालेज के लड़के प्रश्नपत्र की आलोचना में निमग्न हैं। रास्ते के किनारे चाय की दूकान में रेडियो से प्रथम सांध्य समाचार की घोषणा।

इसके बाद प्रौढ़ों ने जाना शुरू किया एक-एक करके। भीड़ छटती जा रही है क्रमशः। जैसे एक ही जगह बैठकर एक ही नदी का ज्वार और भाटा देख रहा है इंद्रजीत।

अचानक हल्की आवाज में दबी हंसी की आवाज सुनकर इंद्रजीत सीधे होकर बैठ गया। पास की झाड़ी के पीछे, थोड़ी देर पहले ही जो दो लोग उसकी ओर थोड़ी शंकित थोड़ी उत्सुक आंखों से देखते-देखते जाकर बैठे थे, वह इंद्रजीत की नजर से बचा नहीं था। इसके बाद फिर कब अन्यमनस्कता में उन्हें भूल भी गया था। इतनी देर बाद इसी हंसी की आवाज ने उसके उद्वेलित मन में आग लगा दी।

कितना गलीज, खराब है, लड़कियों का इस तरह अचानक खुश हो उठना, ऐसे खुले ढंग से हंसना।

इंद्रजीत उठ खड़ा हुआ। ओस पड़ना शुरू हो गयी है। इसलिए नहीं। बगल की झाड़ियों के पीछे से रह-रहकर आती हुई यह हल्की हंसी सहन नहीं हो पा रही है।

घर लौटकर अपने कमरे की ओर जाते-जाते इंद्रजीत ने उस ओर के दरवाजे की तरफ देखा। जिन अंधेरों को कमरे के अंदर बंदी बनाकर गयी थी शांति, वे ही किसी समय दरवाजे की दरार से निकल पड़े हैं, अंदर बाहर इस समय सब एक समान है, कुछ दिखायी नहीं पड़ता, सांकल में लटकता हुआ डर से ठक-ठक कर कांपता हुआ ताला भी नहीं। चौखट की दरार से वही डरपोक चूहा अभी तक सहमी हुई उत्सुक आंखों से देख रहा है कि नहीं किसे पता।

कमरे के अंदर पैर रखते ही आश्चर्यचकित हो गया। फिस से माचिस जलायी थी, ठीक-ठाक देखने के लिए, लेकिन ठीक-ठाक देखने के पहले देखा नीला को।

और एक तीली जलाकर लालटेन जलानी पड़ी।

तकिये में चेहरा घुसा कर, अधलोटी सी उल्टी पड़ी थी नीला, घूमकर देखा अब लौटे हो। मैं कब से बैठी हुई हूं।

थोड़ा सा गर्व, थोड़ी सी खुशी। इंद्रजीत को लगा कि इतनी खूबसूरत नीला कभी नहीं लगी। यत्नपूर्वक पहनी गयी एक हल्के रंग की साड़ी। सबसे ज्यादा आश्चर्य हुआ टकटकाते हुए दोनों होंठों को देखकर।

"तुम पान खाती हो शायद ?"

"खाती तो नहीं हूं," नीला ने चेहरा उठा कर कहा, "केवल आज खाया है एक, लेकिन तुमने इतनी देर क्यों की ?"

आज सारी शाम नीला ने इस कमरे में झाड़ू दी है, ढंग से बिस्तर बिछाया है। थोड़ा बहुत जो था इधर-उधर बिखरा हुआ, सब सजाया है। टेबल पर खाना ढका हुआ रखा है।

"किसके लिए ?" इंद्रजीत ने पूछा, यद्यपि जरूरत नहीं थी।

"तुम्हारे लिए। आज से तुम हम लोगों के साथ खाओगे।"

कृतज्ञता के आवेग से अभिभूत हो उठा इंद्रजीत। इस क्षीण प्रकाश वाले कमरे में, रात के दूसरे प्रहर की स्तब्धता में कितनी महान लग रही है नीला। कुछ देर

पहले सब कुछ खाली बर्तन की तरह बेकार लग रहा था, फिर से सब पूरी तरह भर गया है। जिस क्षण मौत से नीला पड़ गया था, उसी क्षण में जिसने संजीवनी लाकर रखी थी उसके अधर पल्लवों पर, उसके निकट इंद्रजीत जीवन के कर्ज से दबा हुआ है।

कुछेक दिनों की घूमाघामी के बाद इंद्रजीत ने एक नौकरी ठीक कर ली। साधारण सा काम, तनख्वाह उससे भी साधारण। एक प्रेस में प्रूफ देखना होगा। महीने के अंत में पच्चीस रुपये। लेकिन बैठे-बैठे खाने में आत्मसम्मान को ठेस पहुंचती है, नीला की कृपा चाहे जितनी भी हो, इंद्रजीत तो जानता है उनकी सामर्थ्य कितनी है। खुद आधा पेट खाकर नीला उसके लिए खाना लेकर आती है कि नहीं कोई ठीक नहीं।

नौकरी की बात सुनकर जितनी उत्साहित हुई थी नीला तनख्वाह जानकर उतनी ही हताश हो गयी।

"ये काम क्या तुम्हारे लायक है ?"

इंद्रजीत हंसा, "जिन्होंने काम पर रक्खा है, उनका प्रश्न दूसरे प्रकार का है। उन लोगों को संदेह था कि मैं इस काम के लायक हूं या नहीं। अनुभव नहीं, तन-ख्वाह ही ठीक करना नहीं चाह रहे थे, तीन महीने सीखने के लिए कह रहे थे। बहुत कहा सुनी के बाद इन थोड़े से रुपयों पर राजी हुए।"

प्रेस के मालिक प्रभाकर बाबू ने दूसरे दिन सुबह आने के लिए कहा था। काम के विषय में थोड़ा बहुत सिखा देंगे और दो एक कर्मचारियों के साथ।

इंद्रजीत थोड़ा और भी जल्दी गया। उस समय तक छापेखाने का दरवाजा भी नहीं खुला था। अच्छी तरह खाकर भी नहीं आ सका, इतनी जल्दी न आने से भी चलता। इधर उधर कुछ देर तक घूमता रहा। इंद्रजीत ने एक चाय की दुकान में चाय पी। बार-बार देखता रहा घड़ी की तरफ।

दूसरी बार जब घूमकर आया, तब तक दो-तीन कंपोजीटर ही आये थे। इंद्रजीत के जाते ही एक आदमी आगे बढ़ आया। आदर से बैठाकर पूछा, "कोई आर्डर है क्या।"

वह नये काम पर लगा है, इस बात को उन लोगों के सामने स्वीकार करने में इंद्रजीत को कैसा लगा। अकबका कर बोला, "प्रेस के मालिक प्रभाकर बाबू से मिलने आया हूं।"

हेड कंपोजीटर निवारण ने चश्मे के पीछे से उसे गौर से देख लिया था। एक कुर्सी खींचकर बोला, "बैठिये। तुरंत आ जायेंगे।"

तुरंत नहीं, प्रभाकर बाबू को आने में लगभग डेढ़ घंटा लग गया। इंद्रजीत को देखकर कहा, "आप आ गये। मुझे थोड़ी देर हो गयी। रास्ते में गाड़ी खराब हो गयी और—आइये इन लोगों से आपका परिचय करा दूं।"

उस तरफ की टेबल पर इसी बीच दो एक लोग आकर बैठ गये थे। प्रभाकार बाबू ने द्रंद्रजीत को उन लोगों के पास बैठा दिया। "शशिबाबू, ये आज से काम करना शुरू करेंगे। इन्हें सब कामकाज समझा दीझिये।" बोलते ही प्रभाकर और बैठे नहीं, काम से दूसरी ओर चले गये।

प्रभाकर के जाते ही शशिपद ने हाथ के, प्रूफ को एक तरफ सरका दिया। पास के लड़के से, जो इतनी देर से कापी लिए खड़ा था, उसे एक पैसा देकर कहा, "जा तो नकुल, झट से एक पान तो ले आ। बंगला पत्ता। जर्दा अलग से लाना।"

पाकेट से सुंघनी निकाल कर कायदे से एक चुटकी नाक में दी। छींका आराम से दो एक बार। इसके बाद एक चीकट मैले रुमाल से नाक साफ कर, सुंघनी की डिबिया इंद्रजीत की ओर बढ़ाकर कहा, "चलेगी क्या ?"

इंद्रजीत ने सिर हिलाया। शशिपद ने तब पाकेट में हाथ डालकर कहा, "बीड़ी ?" इंद्रजीत ने इस बार भी सकुचाते हुए अस्वीकृति जाहिर की।

"ओ, गुड बाय। बीड़ी में फूंक मार कर माचिस जलाते-जलाते शशिपद ने कहा। तब साइन-वाइन जानते हो ?"

इंद्रजीत तुरंत समझ नहीं पाया, "कैसा साइन ?"

शशिपद ने गुस्से से मुंह बनाकर कहा, "साइन नहीं जानते, प्रूफ रीडर होकर आये हैं ? कहा है कि प्रूफ देखेंगे जो, मार्जिन में निशान लगायेंगे तो ?"

"वह तो जानता हूं, कुछ-कुछ।"

"कुछ-कुछ नहीं साहब, अच्छी तरह जानना होगा। यही नकुल, आज छह वर्षों से स्थिर लक्ष्मण की तरह कापी लिये ही खड़ा है। वह बन सका प्रूफ रीडर ? काम बहुत सरल नहीं है साहब, 'ट्रड आई' चाहिए, बंगला अंग्रेजी कंस्ट्रक्शन की थारो नालेज चाहिए…"

नकुल इसी बीच पान ले आया था। गिलौरी मुंह में डाल लीं शशिपद ने, ऊपर से जर्दे को अच्छी तरह से देखभाल कर रख लिया जीभ पर, इसके बाद उठकर

थोड़ी सी पीक रास्ते पर थूक कर पूछा, "तो आपको कितना देने के लिए कहा है साहब ?"

मात्रा इतनी कम कि इंद्रजीत बोल नहीं सका। लेकिन आफिस के सहकारियों से बढ़ाकर बोल पाना दुश्कर है। बोला, "बहुत ही कम। कहा है कमोवेश पच्चीस रुपये।"

आंख और चश्मा एक साथ ही माथे पर चढ़ा लिया शशिपद ने।

"कम कह रहे हैं साहब, प्रभाकर बड़ाल को लूट लिया है कहिये। मेरी अभी बारह वर्षों की सर्विस हो गयी है, घुसा था बीस में अभी मिल रहा है चालीस रुपया। और साहब, वसूल भी उसी तरह किये ले रहा है, पहले केवल बंगला पढ़वायेगा कहकर बुलाया था, अब अंग्रेजी, हिंदी, संस्कृत ·· सब चलाना पड़ रहा है। यही नकुल छोकरा बारह रुपये में घुसा था, छह वर्षों के बाद भी एक के कठघरे से नहीं निकल सका,···सब मिलाकर अठारह रुपया मिल रहा है न नकुल ?"

उठकर शशिपद फिर पान की पीक थूक आया रास्ते पर। "क्या कहूं साहब, चमार हैं। इतने कम रुपये में क्वालिफाइड आदमी मिल रहा है, इसके लिए कोई एहसान है क्या ? कुछ नहीं। मुझे लिखने-पढ़ने में भी दखल था साहब। वैवाहिक गीत लिखा होगा कम से कम पच्चीस तीस। मुझे लिखना नहीं आने पर इनके कितने 'उपहार' के ग्राहक लौट जाते, ये ख्याल किया है किसी दिन ? कमोशन दिया है ? एक पैसा नहीं। प्रभाकर बड़ाल इन सब बातों में बड़ा चालू है। चालू भी कहूं तो कैसे, उस तरफ जो कंपोजीटर लोग दोनों हाथों से चोरी कर रहे हैं, करने पा रहा है कुछ ? कागज की चोरी, स्याही कर चोरी, स्टिक की चोरी, स्पेसिंग की चोरी···सब आंखें खोलकर केवल देखता ही जा रहा हूं। चुप मार कर बैठा रहता हूं।"

हेड कंपोजीटर निवारण आकर बिगड़ा, "तभी से खाली बातें ही किये जा रहे हैं साहब, प्रूफ का ढेर इस ओर जमा हो गया है। शाम को इनकी डिलिवरी देना है, ख्याल है ?"

अचानक चुप हो गया शशिपद। चश्मा ठीक कर झुक गया टेबल पर। नकुल से बिगड़ कर बोला, "मुंह बाकर क्या देख रहा है। कापी सब ठीक कर ले। रख ठीक से।"

निवारण के चले जाने पर, कनखी से देखते हुए धीमे स्वर में कहा, "यह एक खतरनाक आदमी है साहब। मालिक इसके कहने पर उठते-बैठते हैं। यहां की सब बातें ये वहां जाकर दसगुनी करके लगाते हैं। आये हैं जब, दो दिन सब्र कीजिये, सब देखेंगे।"

मुंह से चाहे कुछ भी कहे, चेहरे पर जैसे भय की रंगत आ गयी थी, उससे इंद्रजीत को समझने में कसर नहीं रही कि मन-ही-मन वह निवारण से डरता है।

ठीक चार बजे शशिपद उठकर खड़ा हो गया। कमरे के कोने से एक फटा छाता उठाकर कहा, "चलूं। आप कब उठ रहे हैं ?"

इंद्रजीत ने कहा, "प्रभाकर बाबू तो अभी लौटे नहीं। पहले दिन जाने के समय उनसे कहकर जाना अच्छा नहीं होगा ?"

प्रभाकर बाबू लगभग शाम के पहले लौटे। व्यस्त आदमी, सब काम-काज देख-सुनकर इंद्रजीत की ओर देखने में ही लगभग बीस मिनट निकल गया।

"अरे आप अभी तक हैं। कैसा लगा काम-काज ?"

"अच्छा ही तो है। इंद्रजीत ने कृतार्थ भाव से हंसने की कोशिश की।"

"लगेगा ही तो, काम में मन लगाने से ही अच्छा लगता है। कामचोरों की गुट में मत जाइयेगा, ऐसा होने पर उन्नति नहीं कर सकेंगे।"

दूसरे दिन इंद्रजीत थोड़ी देर से ही आया। छापाखाना इसी बीच खुल गया। सुना कि प्रभाकर बाबू आकर फिर निकल पड़े हैं। शशिपद इत्यादि कोई भी अभी तक नहीं आया है। निश्चित स्थान पर जाकर बैठ गया।

थोड़ी देर बाद ही एक लड़का आकर ढेर-सा प्रूफ टेबल पर रख गया। पांचेक मिनट बाद ही निवारण ने आकर इधर-उधर देखकर कहा, "अरे, ये सब अभी तक पड़ा हुआ है ? शशिपद बाबू शायद आये नहीं ? क्या मुश्किल है। ओ साहब, आप यह सब पढ़ सकेंगे ? जल्दी कीजिएगा—एक बजे तक यह सब फाइनल करके भेजना होगा।"

इंद्रजीत डरते-डरते प्रूफ हाथ में लेकर बैठा। काम शुरू करके देखा उतना कठिन कुछ भी नहीं है। निशान वगैरह तो मालूम ही हैं, पढ़-पढ़कर यथास्थान बैठा देना है।

पढ़ने में पंद्रह मिनट से अधिक नहीं लगा। कमरे में जाकर देखा निवारण बहुत प्रसन्न, "हो गया ? इसी तरह झटपट काम ही तो चाहिए। हम लोगों का शशिपद

होता तो दो घंटा लगा देता।"

लगभग ग्यारह बजे के करीब शशिपद हिलते-डुलते आया। धोती के खूंटे से माथे का पसीना पोंछा, छाता से बैठने की जगह और टेबल को रगड़ कर साफ कर बोला, "प्रूफ आया नहीं ?"

"आया था" इंद्रजीत ने भिची हंसी में कहा। "मैंने पढ़ दिया है।"

"पढ़ दिये हैं ?" आश्चर्यचकित होकर देखा शशिपद, खुश हुआ कि नहीं। समझ नहीं आया। "आप शायद बहुत देर से आये हैं ? खूब काम दिखा रहे हैं ?"

"काम क्या। आकर पड़ा हुआ था इसीलिए—"

"इसीलिए और सब्र नहीं कर सके ना। अरे साहब, इस तरह का काम हम लोगों ने पहले बहुत दिखाया है। उससे कुछ नहीं होता, भाई, कुछ नहीं। मालिक काम पूरा न होने से नाराज होगा ही। यह सब सीखने में आपको अभी बहुत वक्त लगेगा।"

थोड़ी देर सुस्ता कर शशिपद ने अचानक हल्के स्वर में कहा, "प्रभाकर बड़ाल ने आपको शायद खूब जल्दी आने के लिए कहा है साहब ?"

"नहीं तो। इस तरह निश्चित समय के लिए तो कुछ नहीं कहा है उन्होंने।"

"कहा है साहब, कहा है," रहस्य भरी हंसी हंसते हुए शशिपद ने कहा, "आपके न बताने से क्या होता है। मैं समझता हूं। कम रुपये में ज्यादा काम चाहता है। दो दिन बाद किसी एक बहाने से मुझे टरका देगा। उस घुग्घू को मैं पहचानता नहीं हूं क्या ? पैंतालिस वर्ष उम्र हुई, देख रहा हूं, बच्चा कच्चा लेकर अंत में रास्ते पर खड़ा होना पड़ेगा।"

थोड़ी देर बाद निवारण इंद्रजीत का देखा हुआ एक प्रूफ हाथ में लेकर आया। "यह सब क्या उल्टे-सुल्टे मार्क लगाये हैं, साहब, कंपोजीटर लोग समझ नहीं पा रहे हैं। बीच में एक 'एकार,' बगल में 'आकार' सब छोड़ते गये हैं। टूटे टाइप को सुधारा भी नहीं,—इसे प्रूफ देखना कहते हैं ? लगता है काम नहीं किया है इसके पहले कहीं भी कभी ?"

प्रूफ निवारण के हाथ से एक तरह से छीन लिया शशिपद ने। "देखें, देखें, मुझे दो। मैं सब ठीक किये दे रहा हूं। तुम चिंता मत करो निवारण।"

चश्मा ठीक करके टेबल पर शशिपद झुक पड़ा। प्रूफ पढ़ता जाता और बड़-बड़ाता जाता, "आह। हिज्जे तक की गलती रह गयी है। आंख बंद कर दस्तखत

केवल बड़े साहब लोग करते हैं साहब । प्रूफ रीडर को कापी के साथ लाईन-बाई-लाईन मिलाकर पढ़ना होता है। यह सब है स्थिर चित्त से करने वाला काम । बस जल्दबाजी में नाम कमाने का शौक भर है, लेकिन काम अच्छी तरह से सीखने की इच्छा नहीं है।"

इंद्रजीत ने सोचा था तीसरे दिन कुछ देर से ही काम के लिए निकलेगा। पिछले दिन शशिपद इत्यादि की बातें सुनकर उसका मन खराब हो गया था। सच ही तो उसको जरूरत क्या, ज्यादा-ज्यादा काम । देखने की। शशिपद यदि सोच रखा है कि उसकी नौकरी हड़पने के लिए ही इंद्रजीत छापाखाने के काम पर आया है, तो इस शक को दूर करना होगा। एक साथ काम करना है, मन-मुटाव रहना अच्छा नहीं होगा और वास्तव में शशिपद से उसका कोई विरोध भी नहीं है। शशिपद की उम्र काफी है, शायद ढेर-से लड़के-बच्चे हैं, गृहस्थी लेकर चिंतित है। इसलिए सब कुछ स्वार्थ की तुला पर हीन भाव से देखता है। उसकी इस भूल को दूर करना होगा ।

जाकर देखा, प्रभाकर बाबू बैठे हैं। उसे देख एक नजर घड़ी की ओर देखा, "अभी ही आ रहे हैं शायद ? झट से यह सब पढ़ दीजिए तो मुझे खुद ही यह सब आज पार्टी के पास ले जाना होगा। शशिपद बाबू अभी तक नहीं आये।"

निरुत्तर इंद्रजीत प्रूफ वगैरह लेकर देखने बैठा। कुछ देर बाद प्रभाकर बाबू घूमकर आये, "हो गया ? अभी भी बाकी है, हैं ? आप तो बहुत स्लो हैं जी। दीजिए मुझे दीजिए । आप न हो तो पकड़ लीजिए।"

प्रूफ पढ़ते-पढ़ते प्रभाकर बाबू ने अचानक एक समय कहा, "आप न हो तो थोड़ा जल्दी आने की कोशिश कीजिए इंद्रजीत बाबू, उससे काम में सुविधा होगी। शशिपद बाबू देर से आते हैं, बूढ़े आदमी हैं, कुछ कहता नहीं हूं। दोनों लोग ही यदि अन-पंचुअल हों तो कैसे चलेगा ?"

दुपहर बाद जब लौटकर आये प्रभाकर बाबू, लगा मिजाज बहुत अच्छा है। लगा एक लंबा आर्डर लेकर आये हैं।

कैसे तो साहस जुटा पाया इंद्रजीत, शुरू से ही जो बात मन में थी, उसे बोल बैठा, "मुझे कुछ रुपया एडवांस देना होगा।"

भौं टेढ़ी करके प्रभाकर बाबू कुछ क्षण तक अपलक देखते रहे । टेबल पर एक पेंसिल से कई बार ठुक-ठुक करने के बाद बोले, "एडवांस देने का सिस्टम तो हम

लोगों का नहीं है। फिर आपने तो कुल तीन दिन ही काम किया है। खैर, मांगा है आपने जब विशेष कारण ही होगा इसीलिए दे रहा हूं।" पाकेट से एक दस रुपया का नोट निकाल कर कहा, "आप नये आदमी हैं, इसीलिए मिला है। लेकिन इसे एक दृष्टांत समझकर मत सोचियेगा। सोच लीजिये मैंने आपको उधार दिया है। एडवांस लेने की आदत बहुत खराब है साहब।"

प्रभाकर के जाते ही शशिपद ने पास में आकर पूछा, "दिया ? कितना दिया साहब ?"

"दस रुपया।"

शशिपद ने इंद्रजीत की पीठ तो थपथपा दी, लेकिन ईर्ष्या से भरे भाव से बोलता रहा, "आपके ऊपर अच्छी कृपा दृष्टि है, कहना होगा। मेरे लड़के को टाइफायड हुआ था, रोने-धोने पर भी एक पैसा अग्रिम नहीं मिला।"

पैर का जूता टूट गया था। इंद्रजीत ने एक जोड़ी सैंडिल खरीदी। दुकान से निकल रहा था। अचानक शो केस की ओर नजर पड़ गयी। मखमल के ऊपर रेशमी काम की हुई एक चप्पल। कितने दिनों से देख रहा था नीला के पैरों में चप्पल नहीं है। मन किया, लेकिन दाम देखा साढ़े चार रुपया। तो इन कुछ रुपयों का ही तो आसरा है, झट से कुछ निष्कर्ष नहीं निकाल सका। थोड़ी देर आगे निकल गया लेकिन फिर लौट आया। दुकानदार से चप्पल की जोड़ी निकाल कर देने के लिए कहा। जहां तक अंदाज है, नीला के पैरों में फिट आयेगी। उसके लिए इतना कर रहो है नीला, यह तो बहुत थोड़ा ही है। कर्त्तव्य। नीला कितनी खुश हो जायेगी इसकी कल्पना करते-करते गली के मुहाने तक पहुंच गया। पाकेट में कुल दो रुपये बचे हैं। पच्चीस रुपयों में से दस रुपया इसी बीच खत्म हो गया।

बहुत कम रुपया है इंद्रजीत ने सोचा, नये सिरे से जीवन शुरू करना चाहता है लेकिन कुल पच्चीस रुपयों का ही आधार है।